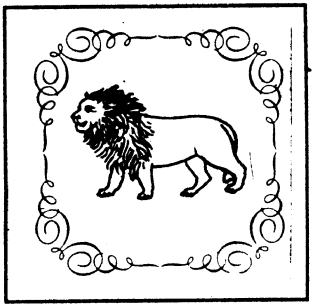

(२४)

भगवान् श्री महावीर

आत्मा की कोई आदि नहीं है। जैन दर्शन में कोई आत्मा प्रारंभ से ही परमात्मा नहीं होती। वह कर्म बंध से भारी बनती है तो उसका नरक गमन हो जाता है और वहां उसे कष्ट उठाना पड़ता है। जब अशुभ कर्म से हल्की होती है और पुण्य का बल होता है तो वह स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करती हैं। संपूर्णतः कर्म मुक्त अवस्था ही मोक्ष की अवस्था है। अन्य भव्य आत्माओं की तरह महावीर की आत्मा थी। उस आत्मा ने अपने कर्तृत्व से जो कुछ किया उसी के अनुरूप उसने सुख-दुःख को प्राप्त किया। भगवान् महावीर के सताइस भवों का वर्णन मिलता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इनकी आत्मा ने मात्र इतने ही भव किए हैं। जिस भव में उन्होंने प्रथम बार सम्यक्त्व को प्राप्त किया वहां से इन भवों की संख्या ली गई हैं।

पहला भव- नयसार (मनुष्य)

जंबू द्वीप के पश्चिम महाविदेह में महावप्र नामक विजय के जयन्ती नाम की नगरी थी। वहां का राजा शत्रुमर्दन था। उसके राज्य में पृथ्वी प्रतिष्ठान गांव के अधिकारी का नाम था नयसार।

एक समय राजाज्ञा प्राप्त कर लकड़ी लाने के लिए जंगल में गया। साथ में कई व्यक्ति थे। मध्यान्ह का समय हुआ। एक बड़े वृक्ष की छांव में नयसार अपने व्यक्तियों के साथ भोजन करने बैठा। उसी समय उसे दूर एक साधु-संघाटक दिखा। साधु एक सार्थ के संग चल रहे थे। सार्थ के आगे निकल जाने पर वे मार्ग भूल गये और उस चिलचिलाती दुपहरी में उस प्रदेश में आ गये जहां नयसार की गाड़ियों का पड़ाव था।

मुनियों को देखते ही नयसार के हृदय में भक्ति के भाव जागे। वह उठा, सामने गया, भाव पूर्ण वंदना की। बातचीत से पता चल गया कि ये मुनि रास्ता भूल कर आये हैं। ये न केवल भूखे हैं अपितु प्यास के कारण इनका गला भी सूख रहा है। इनके बोलने में भी तकलीफ हो रही हैं। उसने बड़ी श्रद्धा के साथ मुनियों को निर्दोष आहार-पानी बहराया। मुनियों ने वृक्ष की छाया में आहार-पानी लिया।

नयसार उठा और साथ चलकर मार्ग बताया। मुख्य मार्ग पर आकर नयसार ने नमस्कार किया। मुनियों ने उसे उपदेश दिया। उपदेश का नयसार पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी नयसार के भव में पहली बार उन्हें सम्यक्त्व का उपार्जन हुआ।

दूसरा भव- स्वर्ग

सौधर्म (पहले) देवलोक में एक पल्योपम स्थिति वाले देव बने।

तीसरा भव- मनुष्य (मरीचि)

देवगति की आयु भोगकर नयसार का जीव चक्रवर्ती भरत का पुत्र मरीचि राजकुमार बना। भगवान् ऋषभदेव का एक बार अयोध्या नगरी में पदार्पण हुआ, समवसरण जुड़ा, भगवान् की देशना हुई। देशना से प्रभावित होकर राजकुमार मरीचि विरक्त बना और भगवान् के पास दीक्षित हो गया। चारित्र की आराधना करते हुए उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

मरीचि सुकुमार थे। एक बार ग्रीष्मकाल में भीषण ताप का परीषह उत्पन्न हुआ, भयंकर प्यास लगी और उनका मन इस संयम मार्ग से विचलित हो गया। मरीचि सोचने लगे- इतना कष्ट पूर्ण संयम का पालन मेरे से नहीं हो सकता क्योंकि मेरे में सहिष्णुता की कमी है। आखिर मरीचि ने निर्णय लिया कि एक बार जब घर छोड़ दिया तो पुनः गृह प्रवेश नहीं करूंगा। किन्तु साधु वेश में रहकर नियमों का पालन नहीं करुं तो आत्म-प्रवंचना होगी।' इस आधार पर उसने अपने मन से एक नये वेष की परिकल्पना की और उसे धारण किया। उसने अपने वेष की कल्पना इस प्रकार की–

"जिनेन्द्र मार्ग के श्रमण मन, वचन और काया के अशुभ व्यापार रूप दंड से मुक्त जितेन्द्रिय होते है। पर मैं मन, वाणी और काया से अगुप्त-अजितेन्द्रिय हूं। इसलिये मुझे प्रतीक रूप से एक त्रिदंड रखना चाहिये।"

"श्रमण सर्वथा प्राणातिपात विरमण के धारक सर्वथा हिंसा के त्यागी होने से मुंडित होते हैं, पर मैं पूर्ण हिंसा का त्यागी नहीं हूं। मैं स्थूल हिंसा से निवृत्ति करूंगा और शिखा सहित क्षुर मुंडन कराऊंगा।"

"श्रमण धन-कंचन रहित एवं शील की सौरभ वाले होते हैं किन्तु मैं परिग्रहधारी और शील-मुनि चर्या की सुगन्ध से रहित हूं अतः मैं चन्दन आदि का लेप करूंगा।"

"श्रमण निर्मोही होने से छत्र नहीं रखते पर मैं मोह-ममता से युक्त हूं, अतः छत्र धारण करूंगा और उपानद् (चप्पल) खड़ाऊ भी पहनूंगा।"

"श्रमण निरम्बर और शुक्लाम्बर होते है, जो स्थविर कल्पी हैं वे निर्मल मनोवृत्ति के प्रतीक श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, पर मैं कषाय से कलुषित हूं अतः मैं काषाय वस्त्र गेरूए, वस्त्र धारण करूंगा।"

"पाप-भीरु श्रमण जीवाकुल समझकर सचित्त जल आदि का आरंभ नहीं करते, किन्तु मैं परिमित जल का स्नान-पानादि में उपयोग करूंगा।"

इस प्रकार के वेष को धारण कर मरीचि भगवान् के साथ विचरण करने लगा। मरीचि अपने पास आने वाले लोगों को भगवान् का मार्ग बताता और भगवान् के पास शिष्य बनने के लिए भेज देता।

एक बार चक्रवर्ती भरत ने भगवान् से प्रश्न पूछा–'भंते ! आपकी सभा में ऐसा कोई जीव है जो इस अवसर्पिणी काल में आपके समान तीर्थंकर बनेगा।'

भगवान् ने कहा 'भरत ! इस सभा में तो कोई जीव नहीं है। समवसरण के बाहर तुम्हारा पुत्र मरीचि है वह इसी भरत क्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर बनेगा। साथ ही इसी भरत क्षेत्र में त्रिपृष्ठ नाम से पहला वासुदेव बनेगा, महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी में प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती बनेगा।'

भरत जी जाते समय मरीचि के पास रुके और यह संवाद सुनाया। भरत जी की बात सुनकर मरीचि अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोलने लगा–

आद्योहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्तिनाम्।
पितामहो जिनेन्द्राणाम्, ममाहो उत्तमं कुलम्।।

मेरा कुल कितना ऊंचा है। मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती हैं, मेरे दादा पहले तीर्थंकर है। मैं भी तीर्थंकर व पहला वासुदेव बनूंगा और चक्रवर्ती भी बनूंगा। अहो! मेरा कुल कितना उत्तम हैं ! कितनी ऋद्धि ! कितनी समृद्धि ! इस प्रकार त्रिदंड को उछालता हुआ नाचने लगा। इस कुल मद के कारण मरीचि के नीच गोत्र का बंध हो गया।

एक दिन मरीचि बीमार हो गया। किसी ने भी उसकी सेवा नहीं की। उस कष्ट में मरीचि ने निर्णय लिया कि वह अपना शिष्य बनायेगा। मरीचि स्वस्थ हुआ, उसने पूर्ववत् जन उद्‌बोधन का क्रम चालू किया। अपना कोई भी शिष्य नहीं बनाया। उसने सोचा-मुनि बनना मेरे शिष्यत्व से उत्तम है। एक बार राजकुमार कपिल आया। उसे भी भगवान् के पास दीक्षा लेने के लिए भेजा, पर उसका वहां मन नहीं जमा। पुनः मरीचि के पास आकर कहा– मैं तो आपका ही शिष्य बनूंगा।

आखिर मरीचि ने उसे अपना शिष्य बना लिया। मरीचि सदैव भगवान् के मत को सर्वश्रेष्ठ बताता था। वह अपनी चर्या को दुर्बल मानता था किन्तु उसने अपने शिष्य कपिल के व्यामोह में यह कहना शुरू कर दिया– 'भगवान् के मार्ग में भी धर्म है और मेरे मार्ग में भी धर्म है।' इस प्रकार मरीचि ने त्रिदंडी संन्यासी के रूप में जीवन बिताया।

चौथा भव-स्वर्ग

ब्रह्म (पांचवां) देवलोक में दस सागरोपम की स्थिति वाले देव बने।

पांचवां भव-मनुष्य

ब्रह्म देवलोक की आयु सम्पन्न कर महावीर का जीव कोल्लाक सन्निवेश में कौशिक नाम के ब्राह्मण रूप में मनुष्य जीवन को प्राप्त किया। जीवन के संध्या काल में वह त्रिदंडी तापस बना। उसका आयुमान ८० लाख पूर्व का था। इस भव के बाद अनेक छोटे भव किये जो २७ भवों की गिनती में नहीं लिये गये हैं।

छठा भव-मनुष्य

थुना नगरी में पुष्यमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ। आयुमान ७२ लाख पूर्व का था। कुछ काल तक गृहस्थाश्रम में रहकर परिव्राजक बना।

सातवां भव-स्वर्ग

सौधर्म (प्रथम) देवलोक में देव बना।

आठवां भव- मनुष्य

देवायु भोगकर नयसार का जीव चैत्य सन्निवेश में अग्निहोत्र ब्राह्मण हुआ। अग्निहोत्र अंत में परिव्राजक बना। इसकी सर्वायु ६४ लाख पूर्व थी।

नौवां भव-स्वर्ग

ईशान (दूसरा) देवलोक में मध्यम स्थिति वाला देव बना।

दसवां भव-मनुष्य

नयसार का जीव मंदिर सन्निवेश में अग्निभूति ब्राह्मण हुआ। आखिर में उसने परिव्राजक दीक्षा स्वीकार की। इसका आयुमान ५६ लाख पूर्व था।

ग्यारहवां भव-स्वर्ग

सनत्कुमार (तीसरा) देवलोक में देव बना।

बारहवां भव-मनुष्य

देवायु भोगकर श्वेतांबिका नगरी में भारद्वाज नाम का ब्राह्मण हुआ। भारद्वाज ने परिव्राजक दीक्षा ली। इसकी संपूर्ण आयु ४४ लाख पूर्व थी।

तेरहवां भव-स्वर्ग

माहेन्द्र (चौथे) देवलोक में देव बने। यहां से च्यवकर अनेक छोटे भव भी किये।

चौदहवां भव-मनुष्य

राजगृह नगर में स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। अंत में परिव्राजक बना। इसका आयुष्य ३४ लाख पूर्व था।

पन्द्रहवां भव-स्वर्ग

ब्रह्म (पांचवें) देवलोक में देव बने।

सोलहवां भव-मनुष्य (विश्वभूति)

राजगृह नगर में विश्वनंदी राजा राज्य करता था। उसका भाई विशाखभूति युवराज था। राजा विश्वनंदी के पुत्र का नाम विशाखनंदी था। युवराज विशाखभूति की रानी का नाम धारिणी था। इसकी कोख से नयसार का जीव पांचवें देवलोक से च्यवकर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। इसका नाम दिया गया विश्वभूति। मरीचि के भव के बाद इस सोलहवें भव में पुनः राज परिवार में जन्म लिया।

विश्वभूति ने जब यौवन वय में प्रवेश किया तो उसका अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया गया। एक दिन विश्वभूति अपनी रानियों एवं दासियों के साथ जल क्रीड़ा करने गया। कुछ क्षणों के बाद राजा विश्वनंदी का पुत्र विशाखनंदी भी अपनी रानियों के साथ घूमने के लिए उसी उद्यान में आया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि विश्वभूति पहले से ही उद्यान में जल क्रीड़ा कर रहा है तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसे बिना मन बाहर ही रहना पड़ा। विशाखनंदी की मां की दासियां भी पुष्प चुनने के लिए उद्यान में आई तो उन्हें भी निराश लौटना पड़ा

दासियों ने राजमहल आकर महारानी प्रियंगु को सारी जानकारी देते हुए कहा–'मौज-मजा तो विश्वभूति लूट रहा है जबकि हकदार आपका पुत्र विशाखनंदी है।' इस पर रानी अत्यन्त कुपित हुई। इसे अपना अपमान समझा और कोप भवन में चली गयी। यह सब सुनकर महाराज चिंतातुर हो गए। राजा ने समझाने की बहुत कोशिश की पर रानी की हठ के सामने उन्हें झुकना पड़ा। विश्वभूति को दूर भेजने की युक्ति निकाली। छल-कपट से राजा ने युद्ध की रणभेरी बजवा दी-हमारा सामंत पुरूषसिंह विद्रोही हो गया है। वह प्रजा को नाना रूप से कष्ट दे रहा है। उसके साथ मैं युद्ध करने जा रहा हूं।'

यह समाचार जलक्रीड़ा करते विश्वभूति ने भी सुना। तत्काल वह राजमहल में आया और राजा से विनती की-आप जैसे सामर्थ्यवान को ऐसे सामंत के विरुद्ध युद्ध के लिए जाना शोभा नहीं देता। मैं स्वयं वहां जाने के लिए तत्पर हूं। आप मुझे आशीर्वाद दें। मैं अतिशीघ्र उसे आपके चरणों में उपस्थित करुं।' विश्वभूति की यह बात सुनकर राजा ने जाने की आज्ञा दे दी। सेना लेकर वह पुरुषसिंह का दमन करने चला।

विश्वभूति के चले जाने के बाद विशाखनंदी ने अपनी रानियों व दासियों के साथ उद्यान में प्रवेश किया और आनंदपूर्वक क्रीड़ा करने लगा।

विश्वभूति जब सामंत पुरुषसिंह की जागीर में पहुंचा तो वहां उसका भव्य स्वागत हुआ। उसका अवज्ञा या विद्रोह का समाचार बिल्कुल असत्य निकला। परस्पर बातचीत के बाद विश्वभूति लौटा। लौटते समय उद्यान रक्षक से पता चला

कि विशाखनंदी अपने अंतः पुर के साथ जल विहार कर रहा है।

विश्वभूति न केवल बलवान् था, अपितु बुद्धिमान भी था। सारे भेद को तुरंत समझने में उसे देर नहीं लगी कि महाराज ने अपने पुत्र के सुख हेतु उसे उद्यान से हटाने के लिए यह पुरुषसिंह के विद्रोह का नाटक रचा है। इस कुटिल चाल से उसे राजा व उसके पुत्र के प्रति बहुत गुस्सा आया। क्रोधावेश में उसने पार्श्व स्थित ताल वृक्ष को मुष्ठि प्रहार कर जोर से झकझोरा। वृक्ष पर लगे फल दनादन गिरने लगे। उसने द्वारपाल को संबोधित करते हुए कहा– 'सुनो, द्वारपाल! मुझे अपनी कुल-मर्यादा व परंपरा के प्रति तनिक भी आदर नहीं होता तो मैं तुम्हारे राजकुमार व झूठे राजा को इन फलों के समान मुष्ठि प्रहार से धराशायी कर देता, समाप्त कर देता।' विश्वभूति का शरीर क्रोध से कांपने लगा।

कुछ क्षणों के बाद उसका गुस्सा शांत हुआ, संवेग का भाव जगा और सोचने लगा-देखो, मैं तो बड़ों के प्रति इतना आदर व प्यार करता था परन्तु ये सब मेरे साथ कपटपूर्ण व्यवहार करते हैं। यह सच है कि यह संसार ही ऐसा है जहां छल-प्रपंच भरा हुआ है।' इसी चिंतन में उसने यह निर्णय ले लिया कि उसे संयम स्वीकार कर आत्म कल्याण करना है। यह निर्णय करने के साथ ही वह राजा (चाचा) व माता-पिता के पास न आकर सीधे उस प्रदेश में विचर रहे आर्य संभूत के पास पहुंचा और उल्लसित भाव से चारित्र अंगीकार किया।

विश्वभूति के मुनि बनने का संवाद मिलते ही राजा विश्वनंदी अपने पुत्र विशाखनंदी व पूरे परिवार को साथ लेकर आया और अपने अपराध के लिए बार-बार क्षमा मांगी और मुनि-धर्म छोड़कर घर आकर राज्य भार संभालने का आग्रह किया। मुनि विश्वभूति इस प्रलोभन में नहीं फंसे। अपने गुरु की सेवा में रहकर तप-जप के द्वारा आत्मा को भावित करने लगे। निरन्तर लंबी-लंबी तपस्याओं से उनका शरीर कृश हो गया। अब गुरु आज्ञा से एकाकी विहार करने लग गये।

उग्र तपस्वी मुनि विश्वभूति मासखमण की तपस्या का पारणा करने हेतु मथुरा नगरी पधारे। उस समय विशाखनंदी भी अपने ससुराल मथुरा आया हुआ था। कृशकाय मुनि को दूर से ही उसके आदमियों ने पहचान लिया। बाद में विशाखनंदी ने भी पहचान लिया। विश्वभूति को देखते ही विशाखनंदी क्रोधित हो गया। उस समय मार्ग से गुजर रही गाय की टक्कर से मुनि गिर गये। उस पर विशाखनंदी ने अट्टहास किया और आनंद मनाते हुए व्यंग्य की भाषा में बोला– 'मुष्ठि प्रहार से फल गिराने वाला बल अब कहां गया।' यह सुनते ही मुनि की दृष्टि उस पर पड़ी और उसे पहचान लिया। मुनि भी क्षमा धर्म से विचलित हो गये और आवेश में बोले-- अभी भी मैं पहले की भांति बलशाली हूं। तपस्या से कृश जरूर हूँ पर दुर्बल नहीं हूँ।' अपने बल एवं शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए मुनि ने उसी गाय

को दोनों सिंगों से मजबूत पकड़कर आकाश में उठाकर घुमाया और उसी आवेश में मुनि ने निदान कर लिया- मेरी आज तक की तपस्या का कोई फल हो तो मुझे आगे इतना प्रबल बल प्राप्त हो कि विशाखनंदी को मार सकूं।' इस निदान का उसने प्रायश्चित्त नहीं किया। उनका आयुष्य करोड़ वर्ष का था।

सतरहवां भव-स्वर्ग

महाशुक्र (सातवें) देवलोक में देव बने।

अठारहवां भव-मनुष्य (वासुदेव)

महाशुक्र देवलोक से च्यवकर नयसार का जीव त्रिपृष्ठ राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। पोतनपुर नगर का राजा प्रजापति था। उसकी दो रानियां थी भद्रा व मृगावती। भद्रा की कुक्षि से राजकुमार अचल का जन्म हुआ। मृगावती से त्रिपृष्ठ का जन्म हुआ। दोनों राजकुमार सब विद्याओं में पारंगत बनकर पिता का सहयोग करने लगे। ये दोनों भाई इस अवसर्पिणी के क्रमशः पहले बलदेव व वासुदेव बने।

प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव तीन खंडों का अधिपति था। रत्नपुर नगर उसकी राजधानी थी। वह अत्यन्त शूरवीर, पराक्रमी व संग्राम का शौकीन था। अश्वग्रीव ने सोचा– तीनों खंडों में मेरे से अधिक कोई भी बलवान नहीं है जो मुझे संग्राम मे जीत सके या मुझे पराधीन कर सके। यदि कोई ऐसा है तो उसका पता लगाना चाहिये। एक अष्टांग निमित्त के जानकार ज्योतिषी को इस संदर्भ में पूछा तो उसने कहा-'जो राजकुमार आपके राजदूत चंडवेग को अपमानित या पराजित करेगा तथा शालिक्षेत्र में रक्षा के लिए भेजे गये राजा-राजकुमारों में जो वहां आतंक फैला रहे शेर को मारेगा उसी राजकुमार के हाथों से आपकी मृत्यु होगी।'

अश्वग्रीव भयातुर हो गया। राजदूत चंडवेग कई राजधानियों में प्रतिवासुदेव का कार्य करता हुआ पोतनपुर राजसभा में पहुंचा। राजसभा में उस समय संगीत का कार्यक्रम चल रहा था।

महाराज प्रजापति, राजकुमार अचल, त्रिपृष्ठ व अन्य आनंद ले रहे थे। राजदूत के आकस्मिक आगमन पर राजा स्वयं खड़ा हुआ और उसे योग्य आसन दिया। राजा ने प्रतिवासुदेव का कुशल क्षेम पूछा। राजकुमार त्रिपृष्ठ के मन में रंग में भंग करने पर दूत के प्रति क्रोध जाग उठा। राजा ने दूत को भेंट आदि देकर ससम्मान विदा किया, पर राजकुमार ने रास्ते में हड़प लिया और उसका अपमान किया। दूत के अपमान की बात सुनकर अश्वग्रीव भयातुर हो गया और सोचा– नैमितज्ञ की पहली बात तो मिल गई है।

उन दिनों अश्वग्रीव के राज्य में शालिखेत में एक शेर का जबर्दस्त आंतक छाया हुआ था। अश्वग्रीव की ओर से शेर को मरवाने के उपाय व्यर्थ चले जाने

पर उन क्षेत्रों की सुरक्षा हेतु बारी-बारी से एक-एक राजा की नियुक्ति कर दी। उस नियुक्ति के क्रम में महाराज प्रजापति का क्रम भी आया। वे जाने के लिए उद्यत हुये तो राजकुमार त्रिपृष्ठ ने आग्रहपूर्वक पिता को रोका। अपने भाई अचल के साथ उस क्षेत्र में पहुंच गये। त्रिपृष्ठ ने सोचा- 'लोगों में छाये भय के आतंक को मिटाने के लिए शेर को समाप्त कर दूं।'

दोनों भाइयों ने लोगों से सारी जानकारी प्राप्त की और शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर शेर की गुफा की और बढ़े। वहां दोनों ने जोर से नाद किया। शेर इस आवाज से क्रुद्ध हो गया। वह गुफा से बाहर आया। उसको पैदल चलते देख त्रिपृष्ठ ने सोचा– यह पैदल है तो मैं रथ पर कैसे बैठूं। राजकुमार रथ से नीचे उतर कर चलने लगे। शेर के पास कोई हथियार नहीं तो मैं हथियार कैसे रखूं। इस चिंतन के साथ अपने हथियार रथ में रख दिये। शेर भयंकर दहाड़ के साथ त्रिपृष्ठ पर झपटा, पर उसने विद्युत्वेग से लपक कर शेर के दोनों जबड़ों को पकड़कर पुराने बांस की तरह चीर डाला।

शेर के मरने की बात सुनकर अश्वग्रीव भयाक्रांत हो उठा और उसे यह लगने लगा कि यह राजकुमार उसका काल है। कुछ सोच-विचार के बाद उसने प्रजापति को संदेश भेजा– आपके दोनों राजकुमारों ने जो वीरतापूर्ण कार्य किया है उसके लिए हम उन्हें पुरस्कृत करना चाहते है अतः उन्हें यहां भेजो।'

संदेश के उत्तर में त्रिपृष्ठ ने उत्तर में कहा– 'जो राजा एक शेर को भी नहीं मार सका उस राजा के हाथ से हम किसी भी प्रकार का पुरस्कार नहीं लेंगे।'

यह सुनकर प्रतिवासुदेव तिलमिला उठा और अपनी चतुरंगिनी सेना के साथ युद्ध भूमि में आ डटा। दोनों का परस्पर लोम हर्षक युद्ध हुआ। आखिर अश्वग्रीव को सुदर्शन चक्र से मारकर त्रिपृष्ठ पहले वासुदेव व अचल पहले बलदेव बने। इसी के साथ वे तीन खंड के एक छत्र स्वामी हो गये। पोतनपुर में एक बार ग्यारहवें– तीर्थंकर भगवान् श्रेयांस नाथ का पदार्पण हुआ। दोनों भाइयों ने भगवान् का प्रवचन सुना। इससे त्रिपृष्ठ को सम्यक्त्व प्राप्त हुई, किन्तु कुछ समय बाद वह प्रकाश समाप्त हो गया। दोनों ही भगवान् के भक्त बने रहे।

वासुदेव त्रिपृष्ठ एक क्रूर शासक थे। उन्हें अनुशासन का भंग कतई पसंद नहीं था। एक बार रात्रि में संगीत हो रहा था। चक्रवर्ती स्वयं पल्यंक पर शय्यापालक से यह कह कर सो गए कि मुझे नींद आने पर संगीत बन्द करवा देना। कुछ समय में उन्हें नींद आ गई, किन्तु संगीत-रसिक शय्यापालक ने संगीत बंद नहीं करवाया। त्रिपृष्ठ जब वापिस जागे, तो संगीत चलता हुआ देखकर वे एकदम क्रुद्ध हो उठे। पूछने पर शय्यापालक ने निवेदन किया– मेरा अपराध क्षमा करें, संगीत मधुर चल रहा था, अतः बंद नहीं किया गया। वासुदेव त्रिपृष्ठ ने क्रोधित होकर

शीशा गर्म करवाया और शय्यापालक के कानों में डलवा दिया। शय्यापालक ने तड़फ-तड़फकर वहीं पर प्राण दे दिये। इस प्रकार उस जन्म में उन्होंने अनेक हिंसक काम किये। वहां से मरकर वे सातवीं नरक में गये। जैन-दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि भले ही तीर्थंकर बनने वाले जीव भी क्यों न हों, कर्म अगर असत् किये हैं तो अधम गति में जाना ही होगा। महावीर के सत्ताईस पूर्व जन्मों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। चारों गतियों में आचरणानुसार उनके जीव को जाना पड़ा था।

वासुदेव त्रिपृष्ठ की सर्वायु ८४ लाख वर्ष थी। उसमें पचीस हजार वर्ष बाल्यावस्था में, पचीस हजार वर्ष मांडलिक राजा के रूप में तथा एक हजार वर्ष दिग्विजय करने में लगे, अवशिष्ट ८३ लाख ४९ हजार वर्ष वासुदेव के रूप में व्यतीत हुए। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव अचल ने भगवान् के पास दीक्षा ली और सिद्धत्व को प्राप्त किया।

उन्नीसवां भव-नरक

सातवीं नरक में अप्रतिष्ठान नरकावास में तेतीस सागरोपम आयु वाले नैरयिक बने।

बीसवां भव-तिर्यंच

शेर की योनि में उत्पन्न हुए।

इक्कीसवां भव-नरक

चौथी नरक में दस सागरोपम आयु वाले नैरयिक बने। नरक से निकलकर नयसार के जीव ने अनेक छोटे-छोटे क्षुद्र भवों में परिभ्रमण किया। वे इन सत्ताइस भवों की गिनती में नहीं है।

बाइसवां भव-मनुष्य

रथनुपुर नगर में प्रियमित्र राजा राज्य करता था। उसकी महारानी विमला की कुक्षि से नयसार का जीव राजकुमार के रूप में जन्मा। उसका नाम दिया गया विमल। यौवन वय में आने पर उसका विवाह कर दिया। अपने पुत्र को योग्य समझकर प्रियमित्र ने राज्य भार सौंप दिया तथा स्वयं दीक्षित हो गये।

राजा विमल बड़ा ही नीति निपुण व सरल परिणामी था, करुणाशील था। एक बार किसी कारण से पास के जंगल प्रदेश में गया। वहां उसने देखा कि एक शिकारी ने जाल लगाकर कई हिरण व हिरणियों को पकड़ रखा है। निरपराध पशुओं की यह दशा देखकर राजा विमल के भीतर दया के भाव जागे। उसने शिकारी को निकट बुलाया और उसे समझाकर शिकार का त्याग कराया। प्रसंगवश उन जानवरों को अभयदान मिल गया। अंत में उन्होंने चारित्र ग्रहण किया।

राजा विमल के इस भव में अगला भव मनुष्य के रूप में निर्णीत हुआ। संयमी

व्यक्ति की ही नहीं सम्यक्त्वी व्यक्ति की भी गति वैमानिक देवलोक की होती है। लगता ऐसा है कि जब राजा के मनुष्य भव का बंध हुआ था उस समय उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुई हो। यदि सम्यक्त्वी अवस्था में अथवा चक्रवर्ती पद की पुण्य प्रकृति का बंध होने के बाद मनुष्य भव का निर्धारण हुआ है तो उसे उस क्षेत्र का 'अछेरा' समझना चाहिये।

तेइसवां भव-मनुष्य (चक्रवर्ती)

पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में मूका नगरी थी। वहां का राजा था धनंजय। उसकी पटरानी धारिणी देवी के गर्भ में नयसार के जीव ने जन्म लिया। चौदह महास्वप्नों से जन्म लेने वाले इस बालक का नाम रखा गया प्रियमित्र।

प्रियमित्र को राज्य भार सौंपकर राजा-रानी दीक्षित हो गये। आयुधशाला में एक बार चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। चक्र की सहायता से छह खंडों को जीतकर चक्रवर्ती बने। लंबे समय तक चक्रवर्ती पद भोगकर पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा स्वीकार की। प्रियमित्र की सर्वायु ८४ लाख पूर्व थी।

चौबीसवां भव-स्वर्ग

महाशुक्र (सातवें) देवलोक में सर्वार्थ नामक विमान में महर्द्धिक देव बने। देव का आयुमान सतरह सागरोपम था।

पचीसवां भव-मनुष्य

सातवें देवलोक से च्यव कर नयसार का जीव जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र की छत्रा नाम की नगरी में राजकुमार नंदन के रूप में जन्मा। पिता महाराज जितशत्रु व माता महारानी भद्रा थी।

महाराज जितशत्रु ने नंदन को राजा बना दिया और स्वयं ने संयम व्रत ग्रहण कर लिया। अब नंदन राजा बन गया। राजा नंदन की आयु पचीस लाख वर्ष की थी। इसमें चौबीस लाख वर्ष गृहस्थावस्था में बिताये। एक लाख वर्ष की आयु जब शेष रही तब पोट्टिलाचार्य के पास संयम-धर्म को प्राप्त किया। आचार्य के पास ग्यारह अंगों का अध्ययन कर राजर्षि नंदन कठोर तपस्वी बन गये। एक लाख वर्ष की संयम पर्याय में निरंतर मास-मासखमण की तपस्या की। इस एक लाख वर्ष की चारित्र पर्याय में ग्यारह लाख साठ हजार मासखमण किये। तप का पारणा काल तीन हजार तीन सौ तेतीस (३३३३) वर्ष, तीन मास और उनतीस दिनों का रहा। तप व अर्हत् भक्ति के द्वारा नंदन मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति का उपार्जन किया। अंत: में दो मास का अनशन कर समाधि-मरण को प्राप्त किया।

छबीसवां भव-स्वर्ग

प्राणत (दसवें) देवलोक के पुष्पोत्तर विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहां

बीस सागरोपम की आयु थी।

सताइसवां भव-भगवान् महावीर

भगवान् ऋषभ तीसरे आरे (काल विभाग) के अन्त में हुए थे और भगवान् महावीर ने चौथे आरे के अन्त में जन्म लिया था। इस अवसर्पिणी काल के वे अंतिम तीर्थंकर थे। आज का जैन-दर्शन उनकी वाणी का ही फलित है। भगवान् महावीर इतिहासकारों की दृष्टि में महान् क्रांतिकारी, परम अहिंसावादी तथा उत्कृष्ट साधक थे। उन्होंने पशु-बलि का विरोध किया, जातिवाद को अतात्त्विक माना और दास प्रथा को हिंसाजनक बतलाया। धर्म के ठेकेदारों ने तब धर्म को अपने-अपने कठघरों में बन्द कर रखा था। उस समय जन साधारण तक धर्म का स्रोत प्रवाहित करने का कठिनतम कार्य भगवान् महावीर ने ही किया। स्वयं राजमहल में जन्म लेकर भी दलित वर्ग को गले लगाया, उसे धर्म का अधिकार प्रदान किया। सचमुच भगवान् महावीर अपने युग के मसीहा थे।

वैशाली का वैभव

भगवान् महावीर के समय वैशाली नगरी का बहुत नाम था। किसी जमाने में वह बड़ी नगरी थी। रामायण में बतलाया गया है कि वैशाली बड़ी विशाल रम्य नगरी थी। जैन आगमों में वर्णन आता है कि बारह योजन लंबी और नौ योजन चौड़ी यह अत्यन्त रमणीय नगरी तीन बड़ी दिवारों से घिरी हुई थी। संसार की सबसे पुरानी गणतांत्रिक शासन प्रणाली उस समय वैशाली में प्रचलित थी। हैहय वंश के राजा चेटक इस गणतंत्र के प्रधान थे। इनके नेतृत्व में वैशाली की ख्याति, वैभव एवं समृद्धि अपने उत्कर्ष पर थी।

राजा चेटक के सात पुत्रियां थी, जिन्हें बड़े-बड़े राजाओं के साथ ब्याही गई थी। वे इस प्रकार हैं–

१. उदयन (सिंधु-सौवीर)	–	प्रभावती
२. दधिवाहन (अंग)	–	पद्मावती
३. शतानीक (वत्स)	–	मृगावती
४. चंडप्रद्योतन (अवंती)	–	शिवा
५. नंदीवर्धन (क्षत्रिय कुंडग्राम)	–	ज्येष्ठा
६. श्रेणिक (मगध)	–	चेलना
७. साध्वी बनी	–	सुज्येष्ठा

वैशाली के पश्चिम भाग में गंडकी नदी बहती थी। उसके पश्चिम तट पर स्थित ब्राह्मण कुंड ग्राम, क्षत्रिय कुंड ग्राम, वाणिज्य ग्राम, कमरिग्राम और कोल्लाग सन्निवेश आदि अनेक उपनगर वैशाली के वैभव को वृद्धिंगत कर रहे थे।

ब्राह्मण कुंडग्राम और क्षत्रिय कुंड ग्राम एक दूसरे के पूर्व पश्चिम थे। ब्राह्मण

कुंडग्राम में मुख्यतः ब्राह्मणों की बस्ती थी। इस बस्ती के नायक थे कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त उसकी पत्नी देवानंदा जालंघर गोत्रीया ब्राह्मणी थी। ऋषभदत्त व देवानंदा भगवान् पार्श्व के अनुयायी थे।

क्षत्रिय कुंडग्राम में ज्ञात वंशीय क्षत्रियों की बस्ती थी। उसके नायक थे काश्यप गोत्री महाराज सिद्धार्थ। वे वैशाली गणराज्य के सक्रिय राजन्य पुरुष थे। उनकी रानी त्रिशला वैशाली के सम्राट् चेटक की बहिन एवं बालिष्ठ गोत्रीया क्षत्रियाणी थी। सिद्धार्थ व त्रिशला भगवान् पार्श्व की श्रमण परंपरा को मानते थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम नंदिवर्धन था। नंदिवर्धन का विवाह सम्राट् चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ हुआ।

अवतरण

देवायु भोगकर नयसार का जीव भरत क्षेत्र के ब्राह्मणकुण्ड ग्राम के प्रमुख ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा की कुक्षि में अवतरित हुआ। माता देवानन्दा ने चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न पाठकों ने एक मत से निर्णय दिया– अंतिम तीर्थंकर आपके घर में अवतरित हुए हैं। स्वप्न फल सुनकर सभी प्रसन्न हुए। देवानन्दा विशेष जागरूकता के साथ गर्भ का पालन करने लगी।

गर्भ साहरण

शक्रेन्द्र महाराज ने एक बार अवधि-दर्शन से ऋषभदत्त के घर देवानन्दा की कुक्षि में प्रभु के अविकसित शरीर को विकसित होते देखा। इन्द्र ने सोचा– 'तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव केवल सत्तासीन कुल में ही उत्पन्न होते हैं। यह आश्चर्य है कि भगवान् का अवतरण ब्राह्मण जैसे याचक कुल में हुआ है। तीर्थंकर सदैव प्रभावशाली कुल में जन्म लेते हैं। वर्तमान में क्षत्रिय वर्ग का प्रभाव अधिक है। सत्ता भी उनके हाथ में है, अतः प्रभु के शरीर का साहरण करके क्षत्रिय कुल में अवस्थित करना चाहिए।'

शक्रेन्द्र ने इसी विचार से हरिणगमेशी देव को बुलाकर निर्देश दिया– 'अन्तिम तीर्थंकर देवानन्दा की कुक्षि में हैं, उन्हें क्षत्रियकुण्ड नगर के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला की कुक्षि में स्थापित करो तथा महारानी त्रिशला के जो गर्भ है उसे देवानन्दा की कुक्षि में स्थानान्तरित करके मझे सूचित करो।'

इन्द्र की आज्ञा पाकर हरिणगमेशी देव चला, देवानन्दा गहरी नींद में सो रही थी। गर्भकाल की वह तयासींवीं रात्रि थी। देव ने भगवान् को नमस्कार कर गर्भ-साहरण की अनुज्ञा मांगी और भगवान् के अर्ध-विकसित डिम्ब का सजगता से साहरण किया तथा महारानी त्रिशला की कुक्षि में स्थापित कर गर्भ की अदला-बदली की प्रक्रिया पूर्ण की। साहरण काल में दोनों माताओं को अवस्वापिनी निद्रा दी गई थी। उसी रात्रि में देवानन्दा और त्रिशला दोनों ने चौदह महास्वप्न

देखे। देवानन्दा को स्वप्न जाते हुए नजर आये और महारानी त्रिशला को स्वप्न आते हुए प्रतीत हुए। यह दिन आसोज कृष्णा १३ का था।

महारानी त्रिशला ने अपने स्वप्नों के बारे में महाराज को बताया। सुबह स्वप्न पाठकों को बुलाया गया और उन्हें स्वप्नों का अर्थ पूछा तो उन्होंने कहा– 'महाराज! महारानी के गर्भ में होने वाले अंतिम तीर्थंकर का जीव आया है।' राजा ने स्वप्न पाठकों को विपुल दान-दक्षिणा दी।

त्रिशला की कुक्षि में भगवान् के अवस्थित होने के बाद सिद्धार्थ राजा का जनपद व भण्डार धन-धान्य से सम्पन्न हो गया। देव-सहयोग से राजभण्डार में अप्रत्याशित रूप से अर्थ की वृद्धि हुई। राजा सिद्धार्थ का मान-सम्मान आसपास के जनपदों में सहसा बढ़ता चला गया।

गर्भ में प्रतिज्ञा

भगवान् को गर्भ में आये सात महीने पूरे हो गये, तब एक बार वे यह सोचकर निश्चल हो गये कि मेरे हलन-चलन से माताजी को वेदना होती होगी। गर्भ का स्पन्दन बन्द होते ही माता त्रिशला चौंक उठी। गर्भ के अनिष्ट-भय से हतप्रभ हो गई। कुछ ही क्षणों में रोने-बिलखने लगी। सभी चिन्तित हो उठे। कुछ समय पश्चात् प्रभु ने अवधि दर्शन से पुनः देखा तो उन्हें सारा ही दृश्य हृदयविदारक नजर आया। तत्काल उन्होंने स्पन्दन प्रारम्भ कर दिया तब कहीं जाकर सबको शांति मिली। भगवान् ने अपने पर माता-पिता का इतना स्नेह देखकर यह प्रतिज्ञा कर ली कि माता-पिता के स्वर्गवास के बाद ही दीक्षा लूंगा, इससे पूर्व नहीं।

महावीर का जन्म

गर्भ काल पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की मध्य रात्रि में महावीर का उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में जन्म हुआ। छप्पन दिग्कुमारियां आई और उन्होंने सारा प्रसूति कर्म किया। जन्मोत्सव मनाने के लिए सर्वप्रथम सौधर्म देवलोक के इन्द्र आये। उन्होंने नवजात शिशु को कर में लिया। उनके ही प्रतिरूप को माता के पास रखा। पांच रुप धारण कर इन्द्र बालक को मेरू पर्वत के पुंडरीक वन में गये। वहां एक शिला पट्ट पर अपनी गोद में शिशु को लेकर इन्द्र पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। उस समय अन्य तिरेसठ इन्द्र व देवगण भी उपस्थित हुए। आभियोगिक देव जल लेकर आए। सब इन्द्र-इंद्रानियों व देवों ने जन्माभिषेक किया।

इन्द्र की आशंका

इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में अंतिम तीर्थंकर का शरीर प्रमाण काफी छोटा होता है। अभिषेक से ठीक पहले सौधर्मेन्द्र के मन में शंका हुई कि यह नन्हा सा शरीर अभिषेक की इतनी जल धारा को कैसे सह पायेगा।

महावीर अवधि ज्ञानी थे। वे इन्द्र की शंका को समझ गये। तीर्थंकर अनंत

बली होते है। शरीर के छोटे-बड़े होने में कोई अंतर नहीं पड़ता। यह बताने के लिए उन्होंने अपने बाएं पैर के अंगूठे से मेरू पर्वत को जरा सा दबाया तो वह कंपायमान हो उठा। मेरू पर्वत के अचानक प्रकंपित होने से इन्द्र सकपका गये। यह सब जानने के लिए उन्होंने अवधि दर्शन लगाया तो उन्हें पता चला कि स्वयं भगवान् ने अनंतबली होने की बात बताने के लिए अपने अंगूठे से पर्वत को हिलाया है। अभिषेक के बाद बालक को पुनः माता के पास रख लिया।

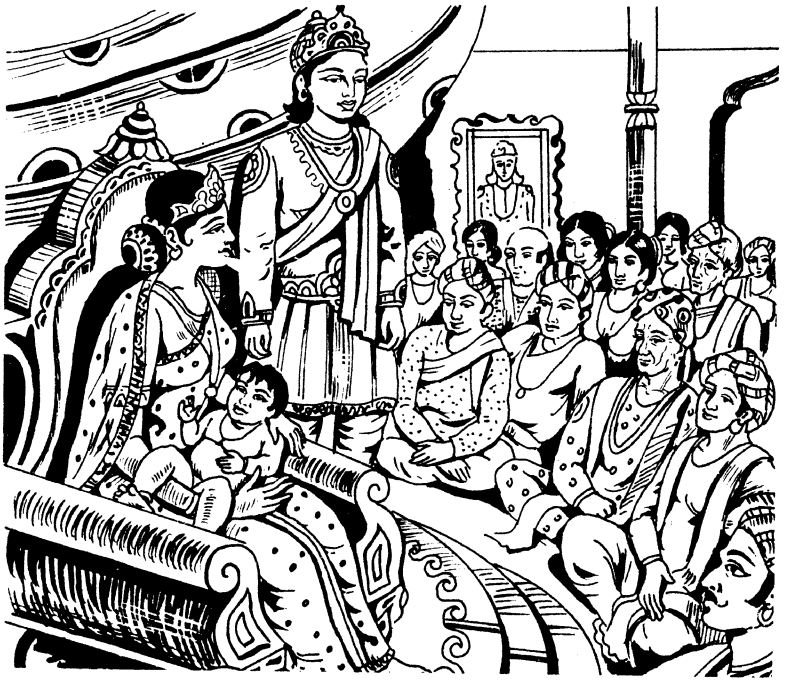

नगर में उत्सव

राजा सिद्धार्थ ने मुक्त हृदय से दस दिन का उत्सव मनाया। प्रजा के आनंद व उत्साह की सीमा नहीं रही। क्षत्रिय कुंड की सजावट इंद्र पुरी को भी मात कर रही थी। नागरिकों का कर माफ कर दिया। कैदियों को बंधन मुक्त कर दिया। नाम के दिन पारिवारिक जनों का प्रीतिभोज रखा गया। समस्त पारिवारिक लोगों ने नवजात शिशु को देखकर आशीर्वाद दिया। नाम की परिचर्चा में राजा सिद्धार्थ ने कहा– 'इसके गर्भकाल में धन-धान्य की अप्रत्याशित वृद्धि हुई थी अतः बालक का नाम वर्धमान रखा जाये।' सभी ने बालक को इसी नाम से पुकारा। बाद में प्रभु के अन्य नाम– महावीर, श्रमण, ज्ञातपुत्र आदि भी प्रचलित हुए।

बाल क्रीड़ा

वर्धमान कुमार ने आठवें वर्ष में प्रवेश किया। एक बार वे अपने समवयस्क साथियों के साथ 'आमलकी' खेल खेलने लगे। उस समय सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा में बालक वर्धमान के बुद्धि कौशल व साहस की प्रशंसा की और कहा– 'उनके साहस का मुकाबला मनुष्य और तिर्यंच क्या देव शक्ति भी नहीं कर सकती। एक देव को इन्द्र की इस बात में अतिशयोक्ति दिखाई दी। वह बालक वर्धमान को पराजित करने के लिए नीचे आया जहां वे खेल रहे थे। वर्धमान उस समय साथी बालकों के संग वृक्ष पर चढ़े हुए थे। वह देव भयंकर सर्प का रूप बना कर उसी वृक्ष की एक शाखा पर लिपट गया और फुफकार करने लगा। सारे बच्चे सर्प को देखकर चिल्ला उठे– 'बचाओ ! बचाओ !! जहरीला सर्प पेड़ पर है।' वर्धमान थोड़े आगे बढ़े और उस सर्प को पकड़ कर दूर फैंक दिया।

पुनः खेल प्रारंभ हुआ। बालक अब 'तिंदूसक' खेल खेलने लगे। इसमें यह नियम था कि अमुक वृक्ष को लक्ष्य करके बच्चे दौड़ते हैं। जो लड़का सबसे पहले उस वृक्ष का स्पर्श कर लेता है वह विजयी और शेष पराजित हो जाते है। बालक रूपधारी देव खेल में कुमार वर्धमान से हार गया। नियमानुसार कुमार उसकी पीठ पर बैठे। वह ज्यों-ज्यों दौड़ता है उसका शरीर लंबा होता गया। दैत्याकार व प्रलंब देह को देखकर सब बच्चे चिल्ला कर भागने लगे। इस चिल्लाहट को सुनकर आस-पास में लोग काफी संख्या में इकट्ठे हो गये। इस दैवी माया को समझते कुमार को देर नहीं लगी। कुमार ने उसकी पीठ पर मुष्ठि प्रहार किया। वर्धमान के तीव्र प्रहार को देव सह नहीं सका। वह तुरंत नीचे बैठ गया। उसे निश्चित विश्वास हो गया कि कुमार को हराना उसकी शक्ति के बाहर है। तुरंत वह अपने वास्तविक रूप में आकर बोला– 'कुमार ! इन्द्र ने जैसी आपकी प्रशंसा की, वैसे ही आप है। मैं तुम्हारा परीक्षक बनकर आया था और प्रशंसक बनकर जा रहा हूं। आप सचमुच में महावीर हो।'

पाठशाला में

बाल-क्रीड़ा के बाद प्रभु जब आठ वर्ष के हुए तो महाराज सिद्धार्थ बालक वर्धमान को पाठशाला में ले गये। शक्रेन्द्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि राजा त्रिज्ञानज्ञ प्रभु को पढ़ाने के लिए पाठशाला ले जा रहे हैं। कलाचार्य इनको क्या पढ़ायेगा ? किन्तु लोगों को पता नहीं हैं। शक्रेन्द्र स्वयं आये, पाठशाला के उपाध्याय एक पट्ट पर आसन लगाकर बैठे थे। वर्धमान कुमार को नीचे बिठाया गया था। अध्ययन प्रारम्भ होने ही वाला था कि इन्द्र एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर उपाध्याय के पास पहुंचे और व्याकरण सम्बन्धी जिज्ञासाएं प्रस्तुत की। उपाध्यायजी प्रश्न सुनकर चकरा गये। हतप्रभ हो आकाश की ओर देखने लगे।

तब वृद्ध विप्र ने बालक वर्धमान से भी वे ही सवाल पूछे, वर्धमान ने सहज भाव से सारे प्रश्नों के उत्तर दे दिये। उत्तर सुनकर कलाचार्यजी विस्मित हो उठे। सोचने लगे– 'इसे मैं क्या पढ़ाऊंगा ? यह तो स्वयं दक्ष है।' उन्होंने तत्काल अपना आसन छोड़ा और नीचे आ बैठे। इन्द्र ने अपना रूप बदलकर वर्धमान का परिचय दिया। सभी प्रसन्न होकर वर्धमान को पुनः राजमहल में ले आए। महावीर के मुख से निकले हुए वचन 'ऐन्द्र व्याकरण' के रूप में प्रसिद्ध हुए।

विवाह

वर्धमान के तारुण्य में प्रवेश करते ही सिद्धार्थ उनके विवाह की तैयारी करने लगे। वर्धमान को विवाह के लिए तैयार करने का काम उनके युवा मित्रों को सौंपा गया। एक दिन उनकी मित्रों से लम्बी बहस चल पड़ी। विवाह के पक्ष और विपक्ष में दलीलें दी जाने लगीं। इसी बीच माता त्रिशला ने वर्धमान से आकर कहा– 'विवाह करने की तेरी इच्छा नहीं है, किन्तु मेरी है। ऐसा मानकर तुझे विवाह करना ही पड़ेगा। तुमने कभी मेरे मन को नहीं दुखाया, मुझे विश्वास है, अब भी नहीं दुखाएगा।'

वर्धमान कुमार अपने भोगावली कर्मों की स्थिति देखकर माताजी की मनुहार पर मौन बने रहे। माताजी ने तुरन्त घोषणा कर दी कि वर्धमान का विवाह होगा।

महाराज सिद्धार्थ ने बसंतपुर नगर के राजा समरवीर की पद्मावती रानी से उत्पन्न पुत्री यशोदा के संग परम हर्षोल्लास के साथ उनका विवाह कर दिया। अनासक्त भाव से भोग भोगते हुए वे समय बिताने लगे। यशोदा से एक पुत्री भी उत्पन्न हुई। उसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। युवा होने पर उसका विवाह राजकुमार जमालि से हुआ।

दिगम्बर परम्परा में वर्धमान के विवाह की बात नहीं है। वे भगवान् को बाल ब्रह्मचारी मानते हैं।

दीक्षा

महावीर के पिता सिद्धार्थ व माता त्रिशला भगवान् पार्श्व की परंपरा के श्रमणोपासक थे। महावीर प्रारंभ से विरक्त थे, पर माता-पिता के अत्यंत स्नेह के कारण दीक्षा की बात को प्रकट नहीं कर रहे थे। उन्होंने गर्भ में ही यह निर्णय कर लिया था कि माता-पिता के रहते वे दीक्षा नहीं लेंगे।

महावीर अठाइस वर्ष के हुए। माता-पिता ने अनशन स्वीकार कर समाधि मरण प्राप्त किया और वे बारहवें अच्युत देवलोक में महर्धिक देव बने। माता-पिता के स्वर्गवास के बाद महावीर ने अपने बड़े भ्राता नन्दिवर्धन से कहा– 'भाईजी ! अब मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिये।'

नंदीवर्धन– ' भाई ! यह तुम क्या कह रहे हो। अभी माता-पिता के वियोग के दुःख को भूला ही नहीं हूं तुम भी छोड़ने की बात कर रहे हो। जब तक हमारा मन स्वस्थ न हो जाये तब तक जाने की बात मत करो।'

महावीर- बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन करना ठीक नहीं पर आप मेरी गृहवास की अवधि तो निश्चित कर दे।'

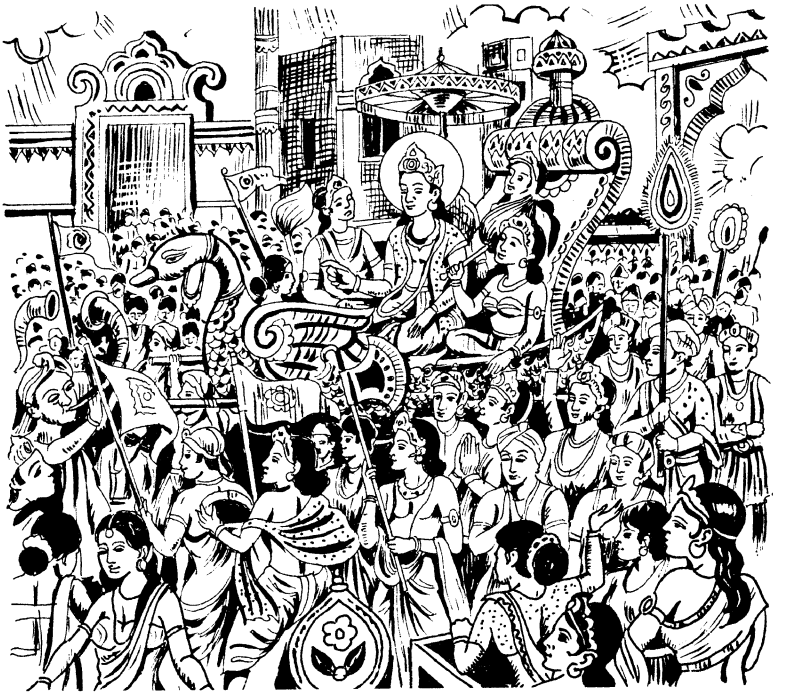

नंदीवर्धन– 'कम से कम दो वर्ष तक।' महावीर दो वर्ष तक गृहवास में और रहे। इस अवधि में उन्होंने त्यागमय जीवन जीया। वे रात्रि भोजन नहीं करते, अचित्त जल पीते, भूमि पर सोते और ब्रह्मचर्य का पालन करते। काय प्रक्षालन में भी अचित्त जल का उपयोग करते। बेले-बेले तप करते। एक वर्ष पूर्ण होने पर नौ लोकांतिक देव सामूहिक रूप से महावीर के पास आये और नमस्कार करके निवेदन किया– 'भगवन्। अब आप जनहित में दीक्षा अंगीकार करे और धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करें।'

महावीर ने वर्षीदान प्रारंभ किया। देव सहयोग से प्रतिदिन एक प्रहर तक एक करोड़ आठ लाख मुद्राओं का दान करते। इस तरह पूरे वर्ष तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया। वर्षीदान के बाद महावीर के काका सुपार्श्व व भाई नंदीवर्धन ने महावीर के दीक्षा महोत्सव की तैयरियां शुरू

कर दी। महावीर ने स्नान किया, चंदन आदि का लेप कर सुंदर परिधान व अलंकार धारण किये। देव-निर्मित विशाल एवं भव्य 'चंद्रप्रभा सुख पालिका में महावीर बैठे। देवों व मनुष्यों ने संयुक्त रूप से उसे उठाया। इसमें अनगिनत देवी-देवता, हजारों स्त्री, पुरुषों, राजा नंदीवर्धन के पूरे लाव लश्कर के साथ सुख पालिका ज्ञात खंड वन में अशोक वृक्ष के नीचे रखी। सुखपालिका से उतर कर महावीर ने अपने समस्त वस्त्रालंकार उतार दिये। मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी, दिन का तीसरा प्रहर, पूर्वाभिमुख महावीर ने पंचमुष्ठि लोच किया। शक्रेन्द्र ने केशों को थाल में लिया और उन्हें क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर दिया।

महावीर ने 'णमो सिद्धांण' कहते हुए देव-मनुष्यों की विशाल परिषद् के बीच यह प्रतिज्ञा की **सव्वं मे अकरणिज्जं पावं कम्मं** अब से मेरे लिए सब पाप कर्म अकरणीय है। यह कहते हुए उन्होंने सामायिक चारित्र स्वीकार किया। दीक्षित होते ही उन्होंने अभिग्रह ग्रहण किया– केवल ज्ञान होने तक मैं व्युत्सृष्ट देह रहूंगा अर्थात् देव, मनुष्य तथा तिर्यंच (पशु जगत्) जीवों की ओर से जो भी उपसर्ग समुत्पन्न होगा उसको समभाव पूर्वक सहन करूंगा' पारिवारिक व अन्य सभी से विदा लेकर भगवान ने वहां से विहार कर दिया।

सौधर्मेन्द्र ने उस समय भगवान् के कन्धे पर देव दूष्य वस्त्र रख दिया। ज्ञात खंड से विहार करके मुहूर्त्त भर दिन शेष रहते कुमरि ग्राम पहुंचे और वहां ध्यानावस्थित हो गये।

प्रथम उपसर्ग

भगवान् कुमरिग्राम के बाहर ध्यानारूढ़ हो गये। कुछ ग्वाले आये और अपने बैलों को संभला कर गांव में चले गये। कुछ समय के बाद वे ग्वाले पुनः आये और बोले– 'बाबा, मेरे बैल यहीं चर रहे थे किधर गये ?' प्रभु मौन थे। सारी रात खोजने पर भी ग्वालों को बैल नहीं मिले। संयोगवश वे बैल चरकर रात्रि को प्रभु के पास आकर बैठ गये थे। ग्वाले रात भर भटकते हुए प्रातः काल पुनः उधर से निकले तो उन्होंने बैलों को वहीं पर देखा। वे रात भर के झुंझलाये हुए तो थे ही, क्रुद्ध हो उठे। बकने लगे– बाबा क्या है! धूर्त है, बैल यहीं थे इसने बताये नहीं ! यों कहकर वे प्रभु पर कोड़े बरसाने लगे। तभी इन्द्र ने अवधि-दर्शन से देखा तथा वहां आकर मूर्ख ग्वालों को समझाया।

शक्रेन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की– 'प्रभो ! आपके कर्म बहुत हैं, अतः उपसर्ग काफी होंगे। मुझे आज्ञा दें, मैं सेवा में रहूं।' भगवान् ने मुस्कराकर कहा– 'देवेन्द्र! अरिहन्त कभी दूसरों के बल पर साधना नहीं करते। अपने सामर्थ्य से ही वे कर्मों का क्षय करते हैं, अतः मुझे किसी की सहायता नहीं चाहिए।'

दूसरे दिन वहां से विहार कर कोल्लाग सन्निवेश में आये और वहां बहुल

ब्राह्मण के घर परमान्न (खीर) से बेले का प्रथम पारणा किया। दान की महिमा गाते हुए देवों ने पंच द्रव्य प्रकट किये।

उपसर्ग व कष्ट प्रधान साधना

भगवान् महावीर के छद्मस्थ काल की साधना उपसर्ग, कष्ट : घटना प्रधान रही। प्राचीन आचार्यों के अभिमत में तेईस तीर्थंकर के कर्म दलिक एक तरफ और भगवान् महावीर के कर्म एक तरफ। इसमें भी महावीर के कर्म अधिक थे। इस कारण महावीर की साधना बड़ी कष्ट पूर्ण व प्रखर रही।

आचारांग सूत्र व कल्प सूत्र में भगवान् की साधना का विस्तृत वर्णन मिलता है कि दीक्षित होने के बाद महावीर ने देव दूष्य वस्त्र के अतिरिक्त कुछ नहीं रखा। लगभग तेरह मास तक वस्त्र भगवान् के कंधे पर रहा। उसके बाद उस वस्त्र के गिर जाने से वे पूर्ण रूप से अचेल हो गये।

दीक्षा के समय उनके शरीर पर जो सुगंधित विलेपन किया गया था, उससे आकृष्ट होकर भ्रमर व सुगंध प्रेमी कीट भगवान् के शरीर पर चार माह तक मंडराते रहे, मांस को नोचते रहे, रक्त पीते रहे, पर महावीर ने उफ् तक नहीं किया। उस सुगंध से प्रभावित होकर मनचले युवक भगवान् के पास आते और निवेदन करते आपके शरीर में अत्यधिक सुगंध आ रही है। हमें भी कोई उपाय बतायें व चूर्ण दें जिससे हमारे शरीर में सुवास फैले। मौन रहने के कारण वे युवक उन्हें छेड़ते, कष्ट देते और चले जाते। आपके रूप-सौन्दर्य, सुगठित व बलिष्ठ शरीर को देखकर स्वेच्छा विहारिणी युवतियां अपनी काम पीपासा शांत करने के लिए आती। वे अपने हाव-भाव प्रदर्शित करती, कटाक्ष करती, विविध नृत्य व भावों से आकर्षित करने का प्रयास करती, पर महावीर तो मेरू पर्वत की भांति अडोल रहते। उन पर इनका कोई असर नहीं होता। आखिर हार कर उन्हें कष्ट देती हुई चली जाती।

साधना काल में वे कभी निर्जन झोंपडी, कभी प्याऊ या कुटिया, कभी खंडहर या धर्मशाला में कभी यक्ष मंदिर व श्मसान में निवास करते। शीत काल में भयंकर ठंड के समय दूसरे साधक सर्दी से बचने के लिए गर्म स्थानों में रहते, कपड़े ओढ़ते, पर महावीर उस सर्दी में भी खुले बदन खुले स्थान में खड़े रहते और सर्दी से बचाव की इच्छा तक भी नहीं करते। अपनी बाहुओं को नहीं समेटते। खुले शरीर होने से सर्दी गर्मी के अलावा दंश-मशक (मच्छर) का भी पूरा परीषह रहता। कभी सर्प आदि विषैले व काक, गीध आदि तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षियों के प्रहार भी सहन करते। कभी-कभी लोग उन्हें चोर या जासूस समझ कर पीटते, अपमानित करते। भयंकर दैवी उपसर्गों को भी समभाव से सहते।

साधनाकाल में महावीर ने प्रायः नींद नहीं ली। जब उन्हें निद्रा सताती वे खड़े हो जाते या कुछ समय चंक्रमण कर नींद को भगा देते थे। विहार के प्रसंग

में भगवान् अगल-बगल व पीछे मुड़ कर नहीं देखते। मार्ग में वे किसी से बोलते नहीं थे। प्रायः तप में रहते। पारणे में जो रूखा-सूखा ठंडा-बासी भोजन मिल जाता उसे वे अनासक्त भाव से ग्रहण कर लेते। रोग उत्पन्न होने पर औषध-सेवन नहीं करते। आंख में रजकण पड़ने पर भी उसे निकालने तक भी इच्छा नहीं रखते। शरीर को कभी भी नहीं खुजलाते। इस प्रकार देह से विदेह होते हुए प्रतिक्षण प्रतिपल जागरूक व सजग रहकर ध्यान व कायोत्सर्ग से अपनी आत्मा को भावित करते।

साधना का पहला वर्ष

कोल्लाग सन्निवेश से विहार कर भगवान् मोराक सन्निवेश पधारे। वहां "दुईज्जन्तक" तापसों का आश्रम था। आश्रम का कुलपति महाराज सिद्धार्थ का मित्र था। प्रभु को आते देख कुलपति सामने आये, स्वागत किया और वहां ठहरने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना पर महावीर ने वहीं ठहरने का निश्चय किया और एक रात्रि प्रतिमा धारण कर ध्यानावस्थित हो गये। दूसरे दिन जब महावीर विहार करने लगे तो कुलपति ने आश्रम में चातुर्मास व्यतीत करने का निवेदन किया। ध्यान-योग्य एकांत स्थल को देख कर उस प्रार्थना को महावीर ने स्वीकार कर लिया। कुछ समय तक आसपास के गांवों में विचरण कर पुनः वर्षावास के लिए उसी आश्रम में आ गये और पर्ण-कुटी में रहने लगे।

उस वर्ष वर्षा के अभाव में हरी घास व दूब नहीं उग पाई। आस-पास के जंगल में चरने वाले पशु पर्याप्त खाद्य के अभाव में आश्रम की पर्ण कुटीरों की सूखी घास को चरने लगे। आश्रम के तापस पर्णकुटीरों की रक्षा हेतु डंडे लेकर जानवरों को भगा देते। महावीर अपने ध्यान में संलग्न थे। जो अपने शरीर की भी सार संभाल छोड़ चुके हैं वे इस पर्णकुटीर का कैसे ध्यान रखेंगे ? महावीर जिस कुटीर में थे, उसके घास को पशुओं ने खाना शुरू कर दिया। तापसों ने कुलपति से शिकायत की कि आप कैसे अतिथि को ले आये जो अपनी कुटीर की भी रक्षा नहीं कर रहा है।

कुलपति महावीर के पास आये और मृदु उपालंभ देते हुए कहा– 'कुमार ! पक्षी भी अपने नीड़ की रक्षा करते हैं। तुम तो क्षत्रिय राजकुमार हो। तुम्हें तो अपनी कुटी की रक्षा स्वयं जागरूकता से करनी चाहिए।'

महावीर को यह बात नहीं जची। उन्होंने सोचा– "अब यहां मेरा रहना अप्रीतिकर रहेगा, इसलिये यहां रहना उपयुक्त नहीं।" ऐसा सोचकर उन्होंने चातुर्मास का एक पक्ष बिता कर वहां से विहार कर दिया। उस समय भगवान् ने निम्नोक्त पाँच प्रतिज्ञाएं ग्रहण की–

१. अप्रीतिकारक स्थान में नहीं रहूंगा।

२. सदा ध्यान में अवस्थित रहूंगा।
३. नित्य मौन रखूंगा।
४. हमेशा हाथ में ही भोजन करूंगा।
५. गृहस्थों का कभी विनय नहीं करूंगा।

शूलपाणि यक्ष का उपद्रव

मोराक सन्निवेश के आश्रम से विहार कर भगवान् अस्थिग्राम पधारे। एकांत स्थल की खोज में नगर के बाहर शूलपाणि यक्ष के मंदिर में ठहरने की भगवान् ने गांव वालों से अनुमति मांगी। गांव वालों ने कहा– 'बाबा ! रहो भले, पर इस मंदिर में एक यक्ष रहता है जो स्वभाव का बड़ा क्रूर है। रात्रि में वह किसी को नहीं रहने देता, इसलिए आप अन्यत्र ठहरें तो ठीक रहेगा।' सायंकाल पुजारी इन्द्रशर्मा ने पूजा करने के बाद भगवान् को यक्ष के भयंकर उत्पात की सूचना दी, फिर भी महावीर ध्यानावस्थित रहे।

रात्रि में अंधकार व्याप्त होने के बाद यक्ष प्रकट हुआ। लोगों के मना करने के बावजूद भगवान् के वहां रहने से यक्ष ने इसे अपने प्रति धृष्टता समझी। यक्ष ने भयंकर अट्टहास किया जिससे पूरा वनप्रदेश कांप उठा। गांववासियों की छातियां धड़कने लगी, हृदय दहल उठे, पर भगवान निश्चल खड़े रहे। अब यक्ष ने हाथी, पिशाच आदि रूप बनाकर महावीर को विविध कष्ट दिये। भगवान् के आंख, कान आदि सात स्थानों में ऐसी भयंकर वेदना उत्पन्न की कि सामान्य प्राणी के प्राण पखेरू उड़ जाये, पर महावीर कष्टों को सहते रहे। अंत में वह भगवान की दृढ़ता एवं अपूर्व सहिष्णुता के सामने हार गया। शांत होकर यक्ष भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और अपने कृत्य के लिए क्षमा मांगते हुए नमस्कार कर चला गया। फिर शेष रात्रि उपसर्गरहित बीती।

स्वप्न-दर्शन

उसी रात्रि के अंतिम प्रहर में भगवान को मुहूर्त्त भर नींद आ गई। यह उनके साधना काल की प्रथम व चरम नींद थी। उस समय भगवान ने दस स्वप्न देखे–

१. अपने हाथ से ताड़-पिशाच को पछाड़ना।
२. अपनी सेवा करता श्वेत कोकिल।
३. अपनी सेवा करता विचित्र वर्णवाला कोकिल
४. देदीप्यमान दो रत्नमालाएं।
५. श्वेत वर्ण वाला गौवर्ग।
६. विकसित पद्म सरोवर।
७. अपनी भुजाओं से समुद्र को पार करना।

८. उदीयमान सूर्य की किरणों का प्रसार।

९. अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को लपेटना।

१०. मेरू पर्वत पर आरोहण करना।

गांव वालों ने यह अनुमान लगा लिया कि यक्ष ने महावीर को मार डाला। उसी अस्थिग्राम में उत्पल नैमितज्ञ रहता था। किसी समय वह भगवान् पार्श्व की परंपरा का साधु था। बाद में गृहस्थ होकर निमित्त ज्योतिष से अपनी आजीविका चलाता था। उत्पल, इन्द्रशर्मा पुजारी व अन्य गांववालों के साथ यक्ष मंदिर में पहुंचा। वहां पर भगवान् को ध्यानावस्थित अविचल खड़े देखा तो सबके आश्चर्य एवं आनन्द की सीमा नहीं रही। रात में देखे हुए भगवान् के स्वप्नों का उत्पल क्रमशः फल बताने लगा–

१. आप मोहनीय कर्म का अंत करेंगे।

२. आपको शुक्ल ध्यान प्राप्त होगा।

३. आप द्वादशांगी रूप श्रुत का उपदेश देंगे।

४. इसका फल नैमितज्ञ बता नहीं पाया।

५. चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे।

६. देवता आपकी सेवा करेंगे।

७. आप संसार समुद्र को पार करेंगे।

८. आपको केवल ज्ञान प्राप्त होगा।

९. आप द्वारा प्रतिपादित दर्शन व आपका यश दिग्दिगंत तक फैलेगा।

१०. समवसरण में व्यापक धर्म का प्रतिपादन करेंगे।

चौथे स्वप्न का फल नैमितज्ञ नहीं जान सका। इसका फल स्वयं प्रभु ने बताया– 'मैं साधु और गृहस्थ इन दो धर्मों की प्ररूपणा करूंगा।'

अस्थिग्राम के इस पावस-प्रवास में फिर कोई उपसर्ग नहीं हुआ। भगवान ने पन्द्रह-पन्द्रह उपवास की आठ तपस्याएं कीं।

साधना का दूसरा वर्ष

अस्थिग्राम पावस के पश्चात् महावीर मोराक सन्निवेश पधारे। वहां अच्छंदक नामक एक अन्यतीर्थी पाखंडी रहता था। जो ज्योतिष, तंत्र-मंत्रादि में अपनी आजीविका चलाता था। उसका सारे गांव में प्रभाव था। उसके प्रभाव को समाप्त करने के लिए तथा प्रभु का नाम फैलाने के लिए सिद्धार्थ नामक व्यंतर देव ने गांव वालों को चमत्कार दिखाया। इससे अच्छंदक का प्रभाव निष्प्रभ हो गया। अपनी घटती महत्ता को देख वह महावीर के पास आया और करुण स्वर में प्रार्थना करने लगा– 'भगवन्! आप अन्यत्र चले जायें क्योंकि आपके यहां रहने से मेरी आजीविका नष्ट हो जायेगी और मैं दुःखी हो जाऊगां''। ऐसी परिस्थिति में भगवान् ने वहां

रहना उचित नहीं समझा और वहां से वाचाला की ओर विहार कर दिया।

वाचाला के दो सन्निवेश थे एक उत्तर वाचाला व दूसरा दक्षिण वाचाला। दोनों सन्निवेश के बीच सुवर्ण बालुका व रौप्य बालुका नामक दो नदियां बहती थी। भगवान् दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला की ओर जा रहे थे। सुवर्ण बालुका नदी के किनारे भगवान् के कंधे पर इन्द्र द्वारा डाला गया देवदूष्य वस्त्र वहीं कांटों में उलझकर पीछे रह गया। महावीर आगे चले और बाद में कभी वस्त्र ग्रहण नहीं किया। इस तरह तेरह महीनों के बाद वे पूर्ण अचेल हो गये।

चण्डकौशिक का उद्धार

उत्तर वाचाला जाने के लिए दो मार्ग थे। एक कनकखल आश्रम के भीतर से होकर जाता था, दूसरा आश्रम के बाहर होकर। भीतर वाला मार्ग सीधा होने पर भी भयंकर एवं उजड़ा हुआ था। बाहर का मार्ग लंबा व टेढ़ा होने पर भी निरापद था। प्रभु भीतर के मार्ग से चले। मार्ग पर ग्वाले मिले। उन्होंने कहा– 'देवार्य ! यह मार्ग ठीक नहीं है। इस रास्ते पर एक भयानक दृष्टिविष सर्प रहता है जो राहगीरों को जलाकर भस्म कर देता है। आप इस मार्ग से न जाकर बाहर के मार्ग से जाएं तो अच्छा रहेगा।'

महावीर ने उनकी बात पर न तो ध्यान दिया न ही उत्तर। वे चलते हुए सर्प के बिल के पास ध्यानारूढ़ हो गये। सारे दिन आश्रम क्षेत्र में घूमकर सर्प जब अपने स्थान पर लौटा। उसकी दृष्टि ध्यान में खड़े भगवान् पर पड़ी तो वह क्रुद्ध हो गया। उसने अपनी विषभरी दृष्टि भगवान् पर डाली। साधारण प्राणी तो उस सर्प के एक बार के दृष्टिपात से जलकर भस्म हो जाता था, किन्तु भगवान् पर उस विषमयी दृष्टि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। तीन बार भयंकर दृष्टि डालने पर भी जब कोई असर नहीं पड़ा तो उसका क्रोध सीमा लांघ गया। उसने भगवान् के पैरों पर डंक लगाया और श्वेत रुधिर की धारा बह चली। रक्त में दूध का स्वाद पाकर चंडकौशिक स्तब्ध रह गया। वह एकटक प्रभु की शांत व सौम्य मुखमुद्रा को नीहारने लगा।

चंडकौशिक को शांत देख महावीर ने कहा– "उवसम भो चंडकोसिया"। शांत हो चंडकौशिक। चंडकौशिक यह नाम तो मैंने कहीं सुना है। इस ऊहापोह में उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसे अपने पिछले तीन भव याद आ गये। पहले भव में वह तपस्वी मुनि था। एक बार तपस्या का पारणा करने जाते समय मेंढ़की दबकर मर गई। शिष्य के द्वारा दो-तीन बार याद दिलाने पर कि आप इसकी आलोचना करें, तो वह तपस्वी क्रुद्ध हो गया और शिष्य को मारने के लिए उठा। क्रोधावेश में ध्यान न रहने से एक स्तम्भ से सिर टकरा गया, फलतः उसी समय कालधर्म को प्राप्त कर ज्योतिष्क जाति में देव बना। देवायु भोगकर तीसरे भव में कनकखल

आश्रम के पांच सौ तापसों के कुलपति की पत्नी की कुक्षि से पुत्र रूप में जन्मा नाम रखा गया कौशिक। प्रवृत्ति उग्र होने से सब उसे चंडकौशिक कहने लगे। उसका आश्रम व उसके पार्श्ववर्ती वनप्रदेश के प्रति गहरा ममताभाव था। एक बार 'सेयविया' के राजकुमारों ने वन प्रदेश में कुछ उजाड़ कर दिया। सूचना मिलने पर उन राजकुमारों के पीछे वह हाथ में परशु लिए दौड़ा। राजकुमार भाग निकले। चंडकौशिक दौड़ता हुआ गड्डे में गिर पड़ा। परशु की धार अत्यन्त तीक्ष्ण थी। उस पर गिरने से चंडकौशिक का शिरच्छेद हो गया। वहां से इसी आश्रम क्षेत्र में आशीविष सर्प बन गया।

अब चंडकौशिक प्रतिबुद्व हो चुका था। उसने यह संकल्प ले लिया– "अब मैं किसी को भी नहीं सताऊंगा और न आज से जीवनपर्यन्त भोजन, पानी ग्रहण करूंगा"। इस संकल्प के साथ सर्प ने अपने मुंह को बिल में डाल दिया, शेष शरीर को बिल से बाहर। उसके बदले स्वरूप को देखकर आबाल वृद्ध दूध, घी आदि से पूजा अर्चना करने लगे। इससे सर्प के शरीर पर चींटियां लगने लगीं। चींटियों ने उसके शरीर को छलनी बना दिया। इस प्रकार वेदना को समभाव से सहकर सर्प आठवें स्वर्ग में देव रूप में उत्पन्न हुआ। ऐसे थे पतित पावन महावीर।

भगवान् का नौकारोहण

चंडकौशिक का उद्धार कर भगवान् उत्तर वाचाला पधारे। वहां नागरे के सदन में पन्द्रह दिन की तपस्या का खीर से पारणा किया। वहां से श्वे । नगरी पधारे। नगरी के राजा ने भगवान् का भावभीना सत्कार किया। श्वेताबेका से सुरभिपुर जाते हुए मार्ग में गंगा नदी आई। गंगा को पार करने के लिए नौका पर आरूढ़ हो गये। गंगा मध्य पहुंचने पर सुदंष्ट्र देव ने भयंकर तूफान खड़ा कर नौका को उलटने की कोशिश की, पर भक्त नागकुमार देव कम्बल और शम्बल ने उस देव के प्रयत्न को सफल नहीं होने दिया।

धर्म चक्रवर्ती

नौका से उतर कर भगवान् गंगा के किनारे थूनाक सन्निवेश पधारे और वहां ध्यानमुद्रा में अवस्थित हो गये। गांव के पुष्य नामक निमित्तज्ञ ने भगवान् के चरण चिन्ह देखकर सोचने लगा-इन चिन्हों वाला अवश्य ही कोई चक्रवर्ती या सम्राट् होना चाहिए। लगता है कि किसी संकट के कारण अकेला घूम रहा है। यह देखने के लिए चरण-चिन्हों का अनुसरण करता हुआ भगवान् के पास आया। वहां एक भिक्षुक को देखकर उसके मन में ज्योतिष शास्त्र से श्रद्धा हिल गई। वह अपने शास्त्रों को गंगा में फेंकने के लिए उद्यत हुआ तभी इन्द्र ने साक्षात् होकर कहा-'पंडित! शास्त्र ठीक कह रहा है। इससे श्रद्धा को मत हिलाओ। यह साधारण पुरुष नहीं धर्म चक्रवर्ती है। यह देवेन्द्रों व नरेन्द्रों के भी वंदनीय हैं।' 'ऐसा सुनकर

पुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और वंदना करता हुआ चला गया।

थूनाक सन्निवेश से प्रभु राजगृह पधारे। वहां तन्तुवायशाला में चातुर्मास बिताने लगे। मंखलिपुत्र युवा गोशालक भी चातुर्मास बिताने उसी शाला में ठहरा हुआ था। पहले मासखमण का पारणा भगवान् ने विजय सेठ के यहां किया। देवों ने पंच द्रव्य प्रकट किये। प्रभु के अतिशय प्रभाव को देखकर गोशालक आकर्षित हुआ और उनसे स्वयं को उनका शिष्य बनाने की प्रार्थना की। भगवान् मौन रहे। उस चातुर्मास में भगवान् ने चार मासखमण किये। चातुर्मास परिसमाप्ति पर भगवान् ने उसको शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। इसके बाद छह वर्ष तक गोशालक प्रभु के साथ विचरता रहा।

साधना का तीसरा वर्ष

चातुर्मास समाप्ति के बाद भगवान् कोल्लाग सन्निवेश पधारे। वहां से सुवर्णखल, नंदपारक आदि क्षेत्रों में होते हुए चंपा पधारे। यहीं तीसरा चातुर्मास व्यतीत किया। इस चातुर्मास में भगवान् ने दो-दो मास की तपस्या की।

साधना का चौथा वर्ष

चंपा से विहार कर कालाय सन्निवेश पधारे। वहां से पत्तकालय, कुमार सन्निवेश होते हुए चोराक सन्निवेश पहुंचे। वहां पर चोरों व डाकुओं का अत्यधिक भय था। इसलिए पहरेदार पूर्ण सतर्क थे। महावीर व गोशालक को देखकर उनके संशय जागा। पूछने पर महावीर मौन रहे। इस पर पहरेदारों ने क्रोधित होकर महावीर को पीटना शुरू कर दिया। उसी सन्निवेश में उत्पल निमित्तज्ञ की बहनें जयंती व सोमा रहती थी। उन्हें जब इस बात का पता चला तो तुरन्त आई, महावीर का सही परिचय दिया, तब पहरेदारों ने क्षमा मांगते हुए छोड़ दिया। उस वर्ष का चातुर्मास भगवान् ने पृष्ठ चंपा में किया। वहां विविध अभिग्रह युक्त चातुर्मासिक तप स्वीकार किया।

साधना का पांचवां वर्ष

पृष्ठ चंपा का चातुर्मास संपन्न कर प्रभु कयंगला व श्रावस्ती नगरी पधारे। साथ में गोशालक भी था। श्रावस्ती से विहार कर जंगल में हलिद्दुग नामक विशाल वृक्ष के नीचे पधारे और ध्यानारूढ़ हो गये। पार्श्व में लगी भयंकर आग उस वृक्ष के नीचे भी आ गई जिससे भगवान् के पैर झुलस गये। वहां से भगवान् नांगला, आवत्ता व चौराक सन्निवेश होते हुए कलंबुआ पधारे। कलंबुआ के अधिकारी मेघ और कालहस्ती जमींदार होते हुए भी आस-पास के गांवों में डाका डाला करते थे। जब महावीर वहां पहुंचे तो कालहस्ती अपने साथियों के साथ डाका डालने जा रहा था। मार्ग में महावीर से जब भेंट हुई तो उनसे पूछा– "तुम कौन हो ?' महावीर ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर कालहस्ती ने उन्हें खूब पीटा, फिर

भी महावीर नहीं बोले।

इस पर कालहस्ती ने महावीर को अपने बड़े भाई मेघ के पास भिजवाया। मेघ ने उनको गृहस्थाश्रम में एक बार क्षत्रिय कुंड में देखा था अतः देखते ही उसने पहचान लिया। मेघ ने न केवल महावीर को मुक्त किया अपितु उनका सत्कार किया और उनसे क्षमा याचना भी की।

महावीर ने सोचा– मुझे अभी बहुत कर्म क्षय करने है। यहां जगह-जगह परिचित व्यक्ति भी मिल जाते हैं इसलिए अनार्य देश में जाना चाहिए जिससे सर्वथा अपरिचित होने पर कर्म क्षय का अच्छा अवसर मिल सके। ऐसा विचार कर भगवान् ने लाढ़ देश की ओर विहार किया। लाढ़ देश उस समय पूर्ण अनार्य माना जाता था। उस देश के दो भाग थे– वज्र भूमि व शुभ भूमि। इनको उत्तर राढ़ व दक्षिण राढ़ भी कहा जाता था। लाढ़ देश में भगवान् के सामने भयंकर उपसर्ग उपस्थित किये गये, कुछ उपसर्ग (परीषह) इस प्रकार हैं–

- भगवान् को ठहरने के लिए अनुकूल आवास नहीं मिल पाता। दूर-दूर तक गांव उपलब्ध नहीं होने से भगवान् को भयंकर अरण्य में ही ठहरना पड़ता।
- रूखा-सूखा, बासी भोजन भी मुश्किल से मिलता।
- कभी-कभी गांव में पहुंचने से लोग उन्हें मारने लग जाते और उन्हें दूसरे गांव जाने को बाध्य कर देते।
- लोग उन पर विविध रूप से प्रहार करते, जिससे उनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया।
- उन्हें बार-बार गेंद की तरह उछाला गया, पटका गया।
- कुत्ते महावीर को काटने दौड़ते तो लोग उन कुत्तो को रोकते नहीं। अधिकांश तो ऐसे ही थे जो छू-छू कर कुत्तों को काटने के लिए प्रेरित करते।

इस तरह अनार्य प्रदेश में समभावपूर्वक उपसर्ग सहते हुए महान् कर्म-निर्जरा की। आर्य प्रदेश की ओर पुनः आते हुए सीमा पर पूर्ण कलश नामक अनार्य गांव में पधारे। रास्ते में चोर मिले। चोरों ने अपशकुन समझ कर तीक्ष्ण शस्त्रों से प्रहार करने लिए तत्पर हुए तो इन्द्र ने स्वयं उपस्थित होकर उनके इस प्रयास को विफल कर दिया। आर्य देश में पहुंचकर भगवान् ने मलय देश की राजधानी भद्दिला नगरी पधारे। वहां प्रभु ने चातुर्मास कर चातुर्मासिक तप किया।

साधना का छठा वर्ष

भद्दिला से विहार कर कदली समागम, जंबू संड होते हुए तंबाय सन्निवेश पधारे। वहां पार्श्व परंपरा के मुनि नंदिषेण से गोशालक की तकरार हो गई। वहां से कूपिय सन्निवेश पधारने पर उन्हें गुप्तचर समझकर पकड़ लिया। परिचय पूछने

पर मौन रहने से उनकी पिटाई शुरू कर दी। भगवान् पार्श्व की परंपरा में पहले शिष्याएं रही विजया एवं प्रगल्भा नाम की परिव्राजिकाएं आई और समझा-बुझाकर छुड़ा दिया। सबने भगवान् से क्षमा याचना की। कूपिय सन्निवेश से भगवान् ने वैशाली की ओर विहार कर दिया।

गोशालक यह कहकर भगवान् से अलग हो गया– 'आपके साथ रहने से मुझे भी कष्ट पाना पड़ता है। आप मेरा कोई भी बचाव नहीं करते इसलिए मैं आपको छोड़कर अकेला ही विहार कर रहा हूं।' यह कहकर वह राजगृह की ओर रवाना हो गया।

वैशाली में लोहार की कर्मशाला में अनुमति लेकर भगवान् ध्यानारूढ़ हो गए। कर्मशाला के एक कर्मकार-लुहार जो छह महीनों से अस्वस्थता के कारण आ नहीं पा रहा था, स्वस्थ होने पर शुभ दिन देखकर आया। सामने खड़े भगवान् को अपशकुन समझ हथोड़े से मारने दौड़ा तो उसके हाथ सहसा वहीं स्तंभित हो गये और उसका प्रहार विफल हो गया।

वैशाली से विहार कर ग्रामक सन्निवेश में विभेलक यक्ष के स्थान में भगवान् ध्यानासीन हो गये। भगवान् के तपोमय जीवन से प्रभावित होकर यक्ष गुणोत्कीर्तन करने लगा। वहां से भगवान् शालिशीर्ष के रमणीय उद्यान में पधारे। "कटपूतना" नामक व्यंतर देवी ने भगवान् को बहुत कष्ट दिये। अंत में शांत होकर भगवान् से क्षमायाचना कर चली गई। बाद में भद्दिया नगरी में भगवान् ने पावस प्रवास किया। वहां उन्होंने चातुर्मासिक तप किया। गोशालक भी छह मास तक विविध कष्टों को भोगता हुआ पुनः भगवान् के चरणों में पहुंचकर साथ में रहने लगा।

साधना का सातवां वर्ष

भद्दिया नगरी से मगध की ओर विहार किया और चातुर्मास आलंभिया नगर में चातुर्मासिक तप के साथ संपन्न किया। यह वर्ष भगवान् के बिना उपसर्ग के बीता।

साधना का आठवां वर्ष

चातुर्मास समाप्ति पर विहार कर भगवान् कुण्डाक, मद्दना सन्निवेश व बहुसाल होते हुए लोहार्गल पधारे। शत्रु पक्ष का आदमी समझकर महावीर को राजा जितशत्रु के सामने उपस्थित किया गया। वहीं अस्थि गांव का नैमितज्ञ उत्पल बैठा था। उसने भगवान् को पहचान लिया। वह तत्काल उठा और उनके चरणों में वंदन करने के बाद राजा को भगवान् का परिचय दिया। भगवान् को ससम्मान विदा किया। वहां से पुरिमताल, शकटमुख, उन्नाग होते हुए राजगृह में चातुर्मास संपन्न किया। वहां उन्होंने चातुर्मासिक तप किया।

साधना का नौवां वर्ष

चातुर्मास के बाद विशेष कर्मों को खपाने के लिए वज्रभूमि, शुभभूमि जैसे अनार्य प्रदेशों में भगवान् पधारे। वहां अरण्य में, खंडहरों में भगवान् ध्यान करते। अनार्य लोगों ने वहां उनको बहुत कष्ट दिये। उन्हें समभाव पूर्वक सहनकर प्रभु ने महान् कर्म निर्जरा की। वहां उनको चातुर्मास के योग्य स्थान नहीं मिलने से चलते-फिरते चातुर्मास व्यतीत किया।

साधना का दसवां वर्ष

अनार्य भूमि से विहार कर भगवान् आर्य देश के कूर्म भूमि पधारे। गोशालक भी साथ था। रास्ते में सात पुष्पवाले एक तिल के पौधे को देखकर गोशालक ने पूछा– 'भगवन् ! यह पौधा फलयुक्त होगा ?'

भगवान् ने कहा– "हां, यह पौधा फलेगा और सात फूलों के जीव इसकी एक फली में उत्पन्न होंगे।" गोशालक ने भगवान् के कथन को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए उस पौधे को उखाड़कर फेंक दिया। संयोगवश उसी समय थोड़ी वर्षा हुई और वह पुनः खड़ा हो गया। कुछ समय के बाद जब भगवान् उधर से गुजरे तो गोशालक ने कहा– 'प्रभो ! आपकी भविष्यवाणी गलत हो गई।"

भगवान् ने कहा– 'तूने जिस तिल के पौधे को उखाड़ा था वह वहीं पुनः उग गया।" गोशालक को इस पर विश्वास नहीं हुआ। उसने पौधे की फली को तोड़कर देखा तो उसे सात ही तिल मिले। इस घटना से उसका विश्वास ओर दृढ़ हो गया कि जगत् में सब कुछ नियति के अनुसार होता है तथा जो जीव जिस योनि में है वह मर कर उसी योनि में उत्पन्न होता है।

कूर्म ग्राम के बाहिर वैश्यायन तापस सूर्य के सम्मुख दोनों हाथों को ऊपर उठाकर विशेष आतापना कर रहा था। तेज धूप से आकुल होकर उसकी जटा से जुएं नीचे गिर रही थी। वैश्यायन तापस उन्हें उठा-उठाकर पुनः जटा में डाल रहा था। गोशालक ने जब यह देखा तो बोल पड़ा– 'अरे ! तू तपस्वी है या जूओं का शय्यातर (घर)' फिर भी तापस शांत रहा। बार-बार गोशालक के बोलने से वह तापस क्रुद्ध हो गया। गोशालक को मारने के लिए वह पांच-सात हाथ पीछे हटा और उसने तेजोलेश्या का प्रयोग किया। आग के गुब्बारे गोशालक की ओर आने लगे। भय के मारे गोशालक भागा और भगवान् के चरणों में छुप गया। भगवान् ने अनुकंपावश शीतल लेश्या प्रयोग कर उसकी तेजो लेश्या को निरस्त कर दिया। गोशालक को सुरक्षित देख तापस भगवान् की शक्ति को समझ गया और विनम्र शब्दों में भगवान् से क्षमा याचना की।

गोशालक ने भगवान् से तेजो लेश्या की प्राप्ति का उपाय पूछा तो भगवान् ने बता दिया। तेजो लेश्या की साधना के लिए वह भगवान् से पृथक् हो गया और

श्रावस्ती में हालाहला कुंभारिण के घर पर रहकर तेजो लेश्या की साधना करने लगा।

भगवान् द्वारा बताई गई विधि के अनुसार छह मास तक तप, आयंबिल एवं आतापना करके गोशालक ने तेजो लेश्या प्राप्त कर ली। प्रथम परीक्षण के रूप में उसने कुएं पर प्रयोग पानी भरती हुई एक दासी पर किया। तेजो लेश्या प्राप्त होने के बाद गोशालक ने छह दिशाचरों से निमित्त शास्त्र पढ़ा जिससे सुख-दुःख लाभ-हानि, जीवन-मरण– इन छह बातों में सिद्ध वचन हो गया। तेजो लेश्या और निमित्त ज्ञान जैसी असाधारण शक्तियों से गोशालक का महत्त्व बढ़ गया, उसके अनुयायी बढ़ने लगे। वह अपने आजीवक संप्रदाय का प्रवर्तक-आचार्य बन गया।

भगवान् जब वैशाली पधारे, वहां बालक उनको पिशाच समझकर सताने लगे। उस समय महाराज सिद्धार्थ के मित्र नरेश शंख उधर से गुजर रहे थे, उन्होंने उन बालकों को हटाया और महावीर को वंदन कर चले गये।

वैशाली से वाणिज्य ग्राम की ओर चले। मार्ग में गंडकी नदी पार करने के लिए नौका पर चढ़े। नदी पार उतरने पर नाविक ने किराया मांगा, पर महावीर मौन रहे। इस पर गुस्से होकर नाविक ने गर्म बालू पर महावीर को खड़ा कर दिया। संयोगवश शंख नरेश का भानेज चित्र वहां आ पहुंचा। उसने नाविक को समझाया तब कहीं जाकर महावीर मुक्त हुए। वाणिज्य ग्राम में अवधिज्ञानी आनंद श्रावक (भगवान् के प्रमुख दस श्रावकों में प्रमुख आनंद नहीं, यह पार्श्व परंपरा का था) ने भगवान् को वंदन कर कहा– 'भगवन् ! अब आपको अल्पकाल में ही केवलज्ञान प्राप्त होगा।" वाणिज्यग्राम से श्रावस्ती पधार कर चातुर्मास किया।

साधना का ग्यारहवां वर्ष

श्रावस्ती से विहार कर भगवान् सानुलट्ठिय सन्निवेश में पधारे। वहां सोलह की तपस्या की तथा इसमें भद्र प्रतिमा, महाभद्र व सर्वतोभद्र प्रतिमा स्वीकार की। इनमें विविध रूपों में ध्यान-साधना की। इस तपस्या का पारणा आनंद गाथापति की दासी द्वारा फेंके जाने वाले भोजन से किया।

संगम के उपसर्ग

दृढ़भूमि में भगवान् पोलाश चैत्य में तेले की तपस्या कर अचित्त पुद्गल पर अनिमेष दृष्टि से ध्यान किया। इन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से भगवान् को देखा व उनके ध्यान, तपस्या व साधना का महिमा-बखान करते हुए कहा– 'भगवान् महावीर का धैर्य व साहस इतना गजब का है कि मानव तो क्या हम देवता भी उन्हें विचलित नहीं कर सकते।'

सब देवों ने इन्द्र का अनुमोदन किया, पर संगम देव को यह बात नहीं जची। उसने कहा– 'देवेन्द्र ! ऐसी झूठ-मूठ प्रशंसा क्यों करते हो, मुझे छह महिने का

समय दो। मैं उन्हें विचलित कर दूंगा।" इन्द्र को बिना मन यह वचन देना पड़ा– संगम मृत्युलोक में आया और भगवान् के सामने अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गों का जाल बिछा दिया। संगम ने एक रात में उगणीस मारणांतिक कष्ट दिये। एक कष्ट ही व्यक्ति की मृत्यु के लिए काफी था, ऐसे उगणीस कष्टों को भगवान् का वज्र जैसा कठोर शरीर सहता रहा। उगणीस मारणांतिक कष्ट इस प्रकार थे–

१. प्रलयकारी धूलि पात
२. वज्रमुखी चींटियों द्वारा काटना।
३. तीक्ष्ण मच्छरों द्वारा खून चूसना।
४. दीमकों द्वारा चमड़ी को चट करना।
५. बिच्छुओं का डंक मारना।
६. नेवलों द्वारा मांस को नोचना
७. भीमकाय सर्पों के द्वारा डंक प्रहार।
८. चूहों द्वारा शरीर को काटना तथा उन पर पेशाब करना जिससे भयंकर जलन।
९. हाथी-हथिनी के द्वारा सूंड से उछालना व दांतों से प्रहार करना।
१०. पिशाच रूप बनाकर भयानक किलकारी करना।
११. बाघ बनकर शरीर का विदारण करना।
१२. सिद्धार्थ व त्रिशला का रूप बनाकर हृदय विदारक विलाप करना।
१३. भगवान् के पैरों के बीच आग जलाकर भोजन पकाना।
१४. चांडाल का रूप बनाकर भगवान् के शरीर पर पक्षियों का पिंजरा लटकाना तथा उसके द्वारा चोंच, नख आदि से प्रहार।
१५. भयंकर आंधी में शरीर को उडाना।
१६. चक्रवाती हवा में भगवान् की काया को चक्र की भांति घुमाना।
१७. कालचक्र का प्रयोग जिससे भगवान् घुटने तक जमीन में धंस गये।
१८. विमान पर बैठकर देव बोला– "कहिए आपको स्वर्ग चाहिए या अपवर्ग?"
१९. लावण्यमयी अप्सरा द्वारा रागपूर्ण हावभाव की प्रस्तुति।

आवश्यक चुर्णि में बीस परीषहों का विवेचन मिलता है। नौवें उपसर्ग में हाथी-हथिनी का जो संयुक्त है वहां वह पृथक्-पृथक् है।

भगवान् जहां पधारते वहां संगम घरों में सेंध मारकर चोरी करता, घरों से वस्तुएं उठा लाता। इस पर लोग जब उसे पीटते तो वह बोलता– "मुझे क्यों पीटते हो, मैंने तो मेरे गुरु की आज्ञा का मात्र पालन किया है।" लोग महावीर को पकड़ते रस्सियों से बांधते, पीटते। कोई परिचित मिल जाता तो उन लोगों को समझाकर छुड़ा देते।

तोसलि गांव में चोरी करके संगम भगवान् के पास आकर छुप गया और वहां शस्त्र रख दिये। अधिकारियों ने उनको कुख्यात चोर समझ कर फांसी की सजा सुना दी। प्रभु को फांसी के तख्ते पर चढ़ाया, गले में फंदा कसा और नीचे से तख्ती हटा दी। हटाते ही फंदा टूट गया। इस तरह सात बार चढ़ाने पर भी फंदा टूटता गया। विस्मित एवं प्रभावित अधिकारी उनको महापुरुष समझकर मुक्त कर दिया।

संगम ने इस तरह छह महिने तक अगणित दारूण कष्ट दिये। इन्द्र द्वारा दी गई अवधि समाप्त होने को थी। संगम द्वारा इतने उपसर्ग देने पर इन्द्र बड़े खिन्नमना थे। इसी कारण छह महिने से स्वर्ग में नाटक आदि बंद थे। सूर्योदय होने को था तब अंतिम प्रयास में बात-बात में फंसाने की चेष्टा करते हुए संगम ने कहा– 'महावीर ! मैंने तुमको इतने कष्ट दिये, तकलीफ दी, बताओ, मैं तुम्हें कैसा लगता हूं।'

महावीर ने कहा– "संगम ! एक व्यापारी के माल फंसा हुआ था। उसे अपने देश की याद आ गई। वह जल्दी से जल्दी उस माल को सलटाकर देश जाना चाहता था। उस समय एक दलाल ने आकर उस सेठ से कहा– सेठजी ! मैं आपका माल सवाये दाम पर बिका सकता हूं। बता, संगम ! वह दलाल सेठ को कैसा लगेगा।'

संगम– "वह तो अत्यन्त प्रिय लगेगा। सेठ को जल्दी जाना था इसलिए माल जल्दी सलटाना वह भी सवाये दाम पर बिकाना। यह सब होने पर दलाल का अच्छा लगना ही है।"

महावीर– 'संगम ! बस, उसी दलाल की तरह तुम भी मेरे लिए बहुत प्रिय हो। एक तो मुझे जल्दी मोक्ष प्राप्त करना है। उसके लिए कर्मों का क्षय करना जरूरी है। मैं उसके लिए प्रयत्न कर रहा हूं पर तुम्हारे कारण मुझे जल्दी कर्म क्षय का अवसर मिला है इसलिए तुम तो मेरे लिए दलाल की भांति हो।"

इतना सुनते ही संगम लाल-पीला हो गया। धोबी जैसे पत्थर पर कपड़े फटकाता है उसी तरह महावीर के दोनों पैर पकड़कर फटकाने के लिए उद्यत हुआ तभी इन्द्र ने ललकारते हुए संगम से कहा– 'मूर्ख ! यह क्या कर रहा है, देख, सूर्योदय हो गया है। तुम्हारी अवधि पूर्ण हो चुकी है। जो महापुरुष छह महिनों में नहीं डिगा, वह क्या एक क्षण में विचलित हो जायेगा। 'इन्द्र ने इस पर संगम को देवलोक से निष्कासित कर दिया। कहा जाता है कि अभी भी वह अपने परिवार के साथ मेरू पर्वत की चूलिका पर अपना समय व्यतीत कर रहा है।

छह महिने की उपसर्ग सहित सर्वाधिक लंबी तपस्या का भगवान् ने वज्रगांव में पारणा किया, देवों ने पंच द्रव्य प्रकट किये। वहां से आलंभिया, श्वेतांबिका,

सावत्थी, कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह और मिथिला आदि क्षेत्रों में परिभ्रमण करते हुए वैशाली पधारे। वहां चातुर्मासिक तप के साथ चातुर्मास किया।

जीर्ण सेठ की उत्कट भावना

वैशाली में जिनदत्त नामक श्रेष्ठी रहता था। आर्थिक स्थिति कमजोर होने से वह जीर्ण सेठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वह भगवान् के हमेशा दर्शन करने जाता और अपने घर पारणा के लिए भावपूर्ण प्रार्थना करता। पूरे चातुर्मास वह इसी तरह भावना भाता रहा।

चातुर्मास परिसमाप्ति पर भगवान् आहार के लिए निकले और भिक्षाटन करते हुए पूरण सेठ के घर पहुंचे। भगवान् को देखकर पूरण सेठ ने दासी को आदेश दिया और उसने कुलत्थ बहराये। देवों ने पंच द्रव्य प्रकट किये। जब देवों ने दिव्य वृष्टि के साथ "अहोदानं" की देव-दुंदुभि की तो जीर्ण सेठ के भावना की श्रृंखला टूटी। वह घर पर बैठा भगवान् के पधारने की बाट जोह रहा था। इस उत्कट भावना में जीर्ण सेठ ने बारहवें देवलोक का आयुष्य बांधा। भगवान् को जब उत्कृष्ट दानी के बारे में पूछा गया तो उन्होंने जीर्ण सेठ को सबसे बड़ा दानी बताया।

साधना का बारहवां वर्ष : चमरेन्द्र की शरण

वैशाली का पावस प्रवास संपन्न कर भगवान् सुंसुमार पधारे। वहां अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ हो गये। उस समय भगवान् बेले-बेले की तपस्या कर रहे थे। उस समय असुरों की राजधानी चमरचंचा में "पूरण" बाल तपस्वी का जीव इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसने अवधि ज्ञान से अपने ऊपर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते देखा। इस पर उसे बहुत गुस्सा आया तब सामानिक इन्द्रों ने बताया– 'शक्रेन्द्र सदा इसी स्थान का उपयोग करते आये हैं।' इतने पर भी चमरेन्द्र को संतोष नहीं हुआ।

शक्रेन्द्र की ऋद्धि-सिद्धि विनष्ट करने हेतु भगवान् के पास आया और कहा– 'मैं आपकी शरण लेकर शक्र की शोभा को समाप्त करने जा रहा हूं।' उसने वैक्रिय रूप बनाया, शक्रेन्द्र की राज्यसभा में आया और ललकारते हुए देवलोक की शोभा को खत्म करने की बात कहने लगा। इस पर शक्रेन्द्र अतीव कुपित हो गये और उसे मारने के लिए वज्र फेंका। बिजली के स्फुलिंगों को उछालता हुआ वह वज्र ज्योंही आगे बढ़ा, असुरराज भयभीत होकर नीचे सिर व ऊपर पैर कर भागा और भगवान् के चरणों के बीच गिर पड़ा।

शक्रेन्द्र को इतने में चिंतन आया– चमरेन्द्र की इतनी ताकत नहीं कि वह स्वयं ऊपर आ जाये। विचार करते हुए अवधिज्ञान से उन्हें पता चला- यह तो भगवान् महावीर की शरण लेकर आया है। कहीं इससे भगवान् को कष्ट न हो जाये। इस चिंतन के साथ इन्द्र तीव्र गति से दौड़ा और भगवान् से चार अंगुल दूर रहते वज्र

को पकड़ लिया। भगवान् के शरणागत बनने से शक्रेन्द्र ने चमरेन्द्र को क्षमा कर दिया और भगवान् को वंदना कर स्वस्थान चले गये।

चंदना का उद्धार

सुंसुमार से विचरते हुए भगवान् कौशम्बी पधारे। पोष कृष्णा एकम को भगवान् ने तेरह बोलों का भारी अभिग्रह स्वीकार किया। तेरह बोल इस प्रकार है–

१. राजकन्या
२. बाजार में बेची हुई
३. सिरमुण्डित
४. सिर में गद के घाव
५. हाथों में हथकड़ी
६. पैरों में बेड़ी
७. तीन दिन की भूखी
८. भोहरे में हो
९. आधा दिन बीतने के बाद
१०. एक पैर देहली में और एक उसके बाहर
११. सूप के कोने में
१२. उड़द के बाकले
१३. आंखों में आंसू हो।

इन तेरह बोल रूप अभिग्रह को धारण कर भगवान् प्रतिदिन नगरी में भिक्षा के लिए घूमते परंतु कहीं भी अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ। पूरी नगरी में यह चर्चा हो गयी कि हमारे से ऐसी क्या भूल हो गई जो भगवान् बिना कुछ लिए यों ही लौट जाते हैं। इस तरह चार माह बीत गये। एकदा महावीर महामात्य सुगुप्त के घर पधारे। महामात्य की पत्नी नंदा जो स्वयं श्रमणोपासिका थी, ने शुभ भावना के साथ आहार देने के लिए समुपस्थित हुई। अभिग्रह पूर्ण न होने से भगवान् चले गये। इस पर नंदा को बहुत दुःख हुआ। दासियों ने बताया– 'ये तो प्रतिदिन ऐसे ही आकर लौट जाते हैं।' नंदा ने अपने पति महामात्य के सामने चिंता प्रकट की। महारानी मृगावती को जब इसकी अवगति मिली तो महाराज शतानीक से पता लगाने को कहा, किंतु कुछ भी पता न चल सका।

भगवान् के अभिग्रह को पांच महीने संपन्न हो चुके थे। छठा महीना पूरा होने में मात्र पांच दिन शेष थे। हमेशा की भांति भगवान् भिक्षाटन करते-करते धनावह सेठ के घर पहुंचे। चदना ने ज्योंही तरणतारण की जहाज भगवान् महावीर को देखा तो उसका वदन खिल उठा। एक बारगी सारा दुःख भूल गई। उसने भिक्षा लेने की प्रार्थना की, पर एक बोल पूरा न होने से भगवान् आगे बढ़ गये तो चंदना

के आंखों से अश्रुधारा बह चली। महावीर ने मुड़कर देखा। सभी बोल मिल जाने से अभिग्रह पूरा हो गया और चंदना के हाथ से भिक्षा ग्रहण की। देवों ने पंच द्रव्य प्रकट किए। देव दुंदुभि बजी। हथकड़ियां और बेड़ियां आभूषण बन गई और वह अपने मूल रूप में आ गई। यही चंदना भगवान् के केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद प्रथम शिष्या व साध्वी समाज की प्रवर्तिनी बनी।

कौशंबी से सुमंगल, सुच्छेत्ता, पालक आदि क्षेत्रों में विचरते हुए चंपानगरी की स्वातिदत्त की यज्ञशाला में चातुर्मासिक तप के साथ चातुर्मास किया। वहां भगवान् की साधना से प्रभावित होकर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो यक्ष रात्रि में भगवान् की सेवा व भक्ति करने लगे। स्वातिदत्त को जब यह जानकारी हुई तो सोचा– ये कोई विशिष्ट ज्ञानी है। उसने कई प्रश्न पूछे-आत्मा क्या है? प्रत्याख्यान किसे कहते हैं? इत्यादि प्रश्नों को भगवान् ने समाहित किया।

साधना का तेरहवां वर्ष : अंतिम भीषण उपसर्ग

चंपा का चातुर्मास संपन्न कर भगवान् छम्माणी पधारे और गांव बाहर ध्याना वस्थित हो गये। संध्या के समय एक ग्वाला बैलों को भगवान् के पास छोड़कर कार्यवश गांव चला गया। वापस आने पर जब बैल नहीं मिले तो भगवान् से पूछा तो वे मौन रहे। इस पर क्रुद्ध होकर भगवान् के दोनों कानों में काठ के कीले ठोंक दिये। प्रभु को अति वेदना हो रही थी। कहा जाता है कि महावीर ने अपने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में जिस व्यक्ति के कान में गर्म सीसा डलवाया था वही व्यक्ति यह ग्वाला था।

छम्माणी से विहार कर भगवान् मध्यमा पधारे। वहां आहारार्थ घूमते हुए सिद्धार्थ वणिक् के सदन पहुंचे। सिद्धार्थ उस समय अपने मित्र वैद्यराज खरक से बात कर रहा था। भगवान् को दोनों ने वंदना की। प्रभु को देखकर खरक बोला– 'भगवान् का शरीर सर्व लक्षण युक्त होते हुए भी सशल्य है?'

सेठ– 'मित्र ! कहां है शल्य?'

प्रभु की काया को देखकर खरक ने कहा– 'देखो, किसी ने कान में कील ठोक दी है।' दोनों ने भगवान् को रुकने का निवेदन किया, पर उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। महावीर पुनः ध्यानलीन हो गये।

सिद्धार्थ व खरक दवा तथा कुछ व्यक्तियों को लेकर वहां पहुंचे। खरक ने संडासी से काष्ठ की कील खींच निकाली। शलाका निकालते समय प्रभु के मुख से एक भीषण चीख निकल पड़ी, जिससे पूरा उद्यान गूंज उठा। खरक ने व्रण संरोहण औषधि घाव पर लगा कर प्रभु को वंदना की। भगवान् महावीर का यह अंतिम और भीषण परीषह था। यह एक संयोग था कि उपसर्गों का प्रारंभ ग्वाले से हुआ और अंत भी ग्वाले से।

केवल ज्ञान की प्राप्ति

भीषण उपसर्गों, परीषहों व कष्टों को सहते हुए भगवान् महावीर ध्यान एवं तपस्या के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे। विचरते-विचरते प्रभु जंभिय ग्राम के बाहर पधारे। वहां ऋजु बालुका नदी के किनारे श्यामाक गाथापति के खेत में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ हो गये। बेले का तप, गोदोहिका आसन, बैसाख शुक्ला दशमी, दिन का अंतिम प्रहर, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, क्षपक श्रेणी का आरोहण, शुक्लध्यान का द्वितीय चरण, शुभ भाव, शुभ अध्यवसाय में भगवान् ने बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का समूल नाश किया तथा अवशिष्ट तीन घाति कर्म-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अंतराय कर्म का क्षय कर तेरहवें गुणस्थान में केवल ज्ञान व केवल दर्शन को प्राप्त किया। मूर्त्त-अमूर्त्त सभी पदार्थों को भगवान् देखने लगे।

छद्मस्थ काल की साधना

भगवान् महावीर का छद्मस्थ काल बारह वर्ष छह माह पन्द्रह दिन रहा। इस काल में उनकी तपस्या इस प्रकार रही–

० षट्मासी	एक	० पांच दिन कम षट्मासी	एक
० चातुर्मासिक	नौ	० त्रिमासिक	दो
० सार्ध द्विमासिक	दो	० द्विमासिक	छह
० सार्ध मासिक	दो	० मासिक	बारह
० पाक्षिक	बहत्तर	० भद्र प्रतिमा	एक (दो दिन)
० महाभद्र प्रतिमा	एक (चार दिन)	० सर्वतोभद्र प्रतिमा	एक (दस दिन)
० तेला	बारह	० बेला	दो सौ उनतीस

भगवान् ने बेले के दिन दीक्षा ली थी इस कारण साधनाकाल में एक उपवास को और जोड़ देते हैं। उनकी तपस्या ग्यारह वर्ष छह माह पचीस दिन (४१६६ दिन) हुई। पारणा अवधि ग्यारह माह उन्नीस दिन (३४९ दिन) थी। भगवान् की सारी तपस्या चौविहार (निर्जल) थी। कई ऐसा भी मानते हैं कि भगवान् ने चोला (चार दिन) आदि की तपस्या भी की थी।

प्रथम देशना

केवली बनने के बाद चौसठ इन्द्रों व अनगिनत देवी-देवताओं ने भगवान् का केवल महोत्सव मनाया। देवों ने समवसरण की रचना की। इस समवसरण में केवल देवी-देवता थे। भगवान् ने प्रवचन दिया, पर चतुर्विध संघ की स्थापना नहीं हो सकी। देवों ने प्रभु-प्रवचन को सराहा, पर महाव्रत व अणुव्रत दीक्षा नहीं ले सके क्योंकि देवों में यह प्राप्त करने की अर्हता नहीं होती। ऋजु बालुका नदी के किनारे जंगल में देशना होने से कोई मनुष्य नहीं आ सका। तीर्थंकर का उपदेश कभी

निष्फल नहीं होता। उनके प्रथम प्रवचन में ही संघ की स्थापना हो जाती है। भगवान् महावीर की प्रथम देशना निष्फल रहने से इसे दस आश्चर्यों में एक आश्चर्य माना गया। कई आचार्य मानते हैं कि प्रथम प्रवचन में व्यक्ति उपस्थित हुए फिर भी कोई व्रती नहीं बन सका।

गणधरों की दीक्षा

जंभिय गांव से विहार कर भगवान् महावीर मध्यम पावा पधारे। वहां धनाढ्य विप्र सोमिल ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया जिसमें अनेक उच्च कोटि के विद्वान् समागत थे। इनमें ग्यारह महापंडित अपने विशाल शिष्य परिवार के साथ वहां समुपस्थित थे।

मध्यम पावा में देवों ने समवसरण की रचना की। शहर के नर-नारी झुंड़ के झुंड़ पहुंचने लगे। गगन मार्ग से देव-देवियों के समूह आने लगे। इन्हें देखकर पंडित बड़े प्रसन्न हुए और बोले-देखो, ये देवता हमारे यज्ञ में आहुति लेने आ रहे हैं। कुछ ही क्षणों में यज्ञ मंडप के ऊपर से देवों के आगे चले जाने पर वे सशंकित हुए। जब उन्होंने इसका पता लगाया तो जानकारी मिली कि वे सर्वज्ञ महावीर के समवसरण में जा रहे हैं। पंडितों ने इसे अपनी तौहीन समझी। सबसे बड़े पंडित इंद्रभूति गौतम ने सोचा– 'लगता है महावीर पाखंडी है, एन्द्रजालिक है। यह लोगों को भरमा रहा है। चर्चा में मेरे सामने नहीं टिक पायेगा। मैं इसे पराजित करके ही दम लूंगा।' ऐसा निर्णय कर इंद्रभूति जी गौतम अपने पांच सौ शिष्यों के साथ प्रभु के समवसरण में आये। समवसरण में प्रभु को देखते ही गौतम विस्मित हो गये। निकट आते ही भगवान् ने "गौतम" कहकर संबोधित किया तो वे चकित रह गये फिर सोचा– "मेरे पांडित्य की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। मुझे कौन नहीं जानता।'

गौतम के वर्षों से एक संशय जमा हुआ था, जिसे उन्होंने किसी के सामने नहीं कहा। उस संदेह को प्रकट करते हुए भगवान् ने कहा– "गौतम ! तुम्हारे मन में आत्मा के अस्तित्व के बारे में शंका है"। इंद्रभूतिजी चौंके और समझ गये कि ये वास्तव में सर्वज्ञ है। प्रभु ने विस्तार से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया। इन्द्रभूति की शंका मिट गई और अपने पांच सौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार की, शिष्यत्व ग्रहण किया।

इन्द्रभूति की दीक्षा के साथ ही तीर्थ स्थापित हो गया। उनके बाद क्रमशः दसों अवशिष्ट पंडित भी आ गये और अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान पाकर उन्होंने भगवान् के पास शिष्यत्व स्वीकार किया।

दिगंबर परंपरा में यह घटना दूसरे रूप में मिलती है। उसके अनुसार सर्वज्ञता प्राप्ति के पश्चात् भगवान् जंगल में देवनिर्मित समवसरण में विराजमान हो गये,

देव वद्धांजलि हो बैठ गये, पर भगवान् के मुखारविन्द से दिव्य ध्वनि (प्रवचन) प्रकट नहीं हो सकी। बासठवां दिन हो गया। इंद्र को चिंता हुई, अवधि ज्ञान से कारण जानना चाहा तो पता चला- गणधर के अभाव में दिव्य ध्वनि नहीं निकल रही है।

इन्द्र ने भव्यात्मा की खोज की और इन्द्रभूति गौतम को योग्य जानकर वे विद्यार्थी का रूप बनाकर उनके पास आये और बोले-मेरे गुरु ने मुझे गाथा सिखलाई थी, अब वे मौन हैं, अतः आप उसका अर्थ बताइये।' इन्द्रभूति सशर्त बताने के लिए तैयार हुए– यदि मैं बता देता हूं तो मेरा शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा। इन्द्र ने हामी भर दी और गाथा प्रस्तुत की–

पंचेव अत्थिकाया, छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा, सहेउओ बंध मोक्खो य।। षट्खंडागम।।

यह गाथा सुनकर इन्द्रभूतिजी असमंजसता में पड़ गये। पांच अस्तिकाय, षड् जीवनिकाय, पांच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता क्या है, कौन-कौन सी है? छह जीव निकाय का नाम सुनकर उनकी दबी हुई शंका और तीव्रता से उभर कर आ गई। इन्द्रभूति ने कहा– चल, तेरे गुरु के पास ही इस गाथा का अर्थ बताऊंगा। दोनों भगवान् के पास आये।भगवान् ने "गौतम"नाम से संबोधित किया और जीव के अस्तित्व से संबंधित उनकी शंका का निवारण किया। इन्द्रभूति अपने विद्यार्थियों के साथ भगवान् के शिष्य हो गये। उसके बाद भगवान् ने दिव्य देशना दी। अवशिष्ट दस पंडित भी अपने शिष्य समुदाय के साथ दीक्षित हो गये।

ग्यारह ही गणधरों के कितने शिष्य थे, क्या शंका थी? इसका विवरण इस प्रकार है–

गणधर	शिष्य	शंका
१. इन्द्रभूति	५००	आत्मा का अस्तित्व
२. अग्निभूति	५००	पुरुषाद्वैत
३. वायुभूति	५००	तज्जीव-तच्छरीरवाद
४. व्यक्त	५००	ब्रम्हमय जगत्
५. सुधर्मा	५००	जन्मान्तर
६. मंडित	३५०	आत्मा का संसारित्व
७. मौर्यपुत्र	३५०	देव और देवलोक
८. अकंपित	३००	नरक और नारकीय जीव
९. अचलभ्राता	३००	पुण्य-पाप
१० मेतार्य	३००	पुनर्जन्म
११. प्रभास	३००	मुक्ति

का राजा उदयन था। यह प्रसिद्ध नरेश सहस्रानीक का पौत्र व राजा शतानिक व महारानी मृगावती का पुत्र, महाराज चेटक का दौहित्र था। श्रमणोपासिका जयंती उदयन की बुआ थी।

भगवान् का आगमन सुनकर राजा उदयन अपने पूरे परिवार के साथ दर्शनार्थ आया, उपदेश सुना। जयंती श्राविका ने भगवान् से अनेक प्रश्न किये और उनका समाधान पाकर वह दीक्षित हो गई। कौशम्बी से भगवान् श्रावस्ती पधारे। वहां चरम शरीरी सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ ने दीक्षा ली। दोनों ही मुनियों ने अंत में निर्वाण को प्राप्त किया। वहां से विचरते हुए प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे। वहां का निवासी गाथापति आनंद एवं उनकी पत्नी शिवानंदा ने श्रावक के बारह व्रत धारण किये। उस वर्ष चातुर्मास वाणिज्यग्राम में ही किया।

सर्वज्ञता का चौथा वर्ष

वर्षावास संपन्न कर मगध देश में विचरते हुए भगवान् राजगृह पधारे। सम्राट् श्रेणिक ने दर्शन किये। धन्ना व शालिभद्र जैसे धनाढ्य व्यापारी पुत्र दीक्षित हुए। दोनों रिश्ते में साला-बहनोई लगते थे। धन्ना अणगार ने निर्वाण को प्राप्त किया जबकि शालिभद्र एकाभवतारी बनकर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बने। उस वर्ष चातुर्मास राजगृह में संपन्न हुआ।

सर्वज्ञता का पांचवां वर्ष

राजगृह से भगवान् चंपा पधारे। वहां के राजा दत्त के पुत्र राजकुमार महचंद ने दीक्षा ली। वहां से सिंधु-सौवीर की राजधानी वीतभय नगरी में पधारे । यह भगवान् की सबसे लंबी यात्रा थी। इस यात्रा में अनेक साधु शुद्ध आहार-पानी के अभाव में स्वर्गवासी हो गये क्योंकि रास्ता अति विकट था, दूर-दूर तक बस्तियों एवं गांवों का अभाव था। सिंधु-सौवीर के राजा श्रावक उदाई भगवान् के आगमन से बड़े प्रसन्न हुए। अपने भाणेज केशीकुमार को राज्य देकर भगवान् के पास दीक्षित हो गये। कुछ समय वहां विराज कर भगवान् पुनः मगध जनपद में वाणिज्यग्राम पधारे। वहीं उन्होंने चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का छठा वर्ष

चातुर्मास के बाद भगवान् वाराणसी पधारे। वहां कोष्ठक चैत्य में प्रवचन हुआ। यहां के कोट्यधीश चूलनी पिता व उनकी पत्नी श्यामा तथा सुरादेव व उनकी पत्नी धन्या ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। ये दोनों भगवान् के दस प्रमुख श्रावकों में गिने जाते हैं। वाराणसी से भगवान् आलंभिया पधारे। वहां का नरेश जितशत्रु प्रभु के दर्शनार्थ आया।

वहां एक "पुद्गल" नाम का परिव्राजक रहता था। निरंतर बेले-बेले की तपस्या व आतापना करने से उसे विभंग अज्ञान व अवधि दर्शन उत्पन्न हो गया। उस

का राजा उदयन था। यह प्रसिद्ध नरेश सहस्रानीक का पौत्र व राजा शतानिक व महारानी मृगावती का पुत्र, महाराज चेटक का दौहित्र था। श्रमणोपासिका जयंती उदयन की बुआ थी।

भगवान् का आगमन सुनकर राजा उदयन अपने पूरे परिवार के साथ दर्शनार्थ आया, उपदेश सुना। जयंती श्राविका ने भगवान् से अनेक प्रश्न किये और उनका समाधान पाकर वह दीक्षित हो गई। कौशम्बी से भगवान् श्रावस्ती पधारे। वहां चरम शरीरी सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ ने दीक्षा ली। दोनों ही मुनियों ने अंत में निर्वाण को प्राप्त किया। वहां से विचरते हुए प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे। वहां का निवासी गाथापति आनंद एवं उनकी पत्नी शिवानंदा ने श्रावक के बारह व्रत धारण किये। उस वर्ष चातुर्मास वाणिज्यग्राम में ही किया।

सर्वज्ञता का चौथा वर्ष

वर्षावास संपन्न कर मगध देश में विचरते हुए भगवान् राजगृह पधारे। सम्राट् श्रेणिक ने दर्शन किये। धन्ना व शालिभद्र जैसे धनाढ्य व्यापारी पुत्र दीक्षित हुए। दोनों रिश्ते में साला-बहनोई लगते थे। धन्ना अणगार ने निर्वाण को प्राप्त किया जबकि शालिभद्र एकाभवतारी बनकर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बने। उस वर्ष चातुर्मास राजगृह में संपन्न हुआ।

सर्वज्ञता का पांचवां वर्ष

राजगृह से भगवान् चंपा पधारे। वहां के राजा दत्त के पुत्र राजकुमार महचंद ने दीक्षा ली। वहां से सिंधु-सौवीर की राजधानी वीतभय नगरी में पधारे । यह भगवान् की सबसे लंबी यात्रा थी। इस यात्रा में अनेक साधु शुद्ध आहार-पानी के अभाव में स्वर्गवासी हो गये क्योंकि रास्ता अति विकट था, दूर-दूर तक बस्तियों एवं गांवों का अभाव था। सिंधु-सौवीर के राजा श्रावक उदाई भगवान् के आगमन से बड़े प्रसन्न हुए। अपने भाणेज केशीकुमार को राज्य देकर भगवान् के पास दीक्षित हो गये। कुछ समय वहां विराज कर भगवान् पुनः मगध जनपद में वाणिज्यग्राम पधारे। वहीं उन्होंने चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का छठा वर्ष

चातुर्मास के बाद भगवान् वाराणसी पधारे। वहां कोष्ठक चैत्य में प्रवचन हुआ। यहां के कोट्यधीश चूलनी पिता व उनकी पत्नी श्यामा तथा सुरादेव व उनकी पत्नी धन्या ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। ये दोनों भगवान् के दस प्रमुख श्रावकों में गिने जाते हैं। वाराणसी से भगवान् आलंभिया पधारे। वहां का नरेश जितशत्रु प्रभु के दर्शनार्थ आया।

वहां एक "पुद्गल" नाम का परिव्राजक रहता था। निरंतर बेले-बेले की तपस्या व आतापना करने से उसे विभंग अज्ञान व अवधि दर्शन उत्पन्न हो गया। उस

दर्शन के आधार पर उसने घोषणा कर दी कि देवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट दस सागर है। नगर में यह चर्चा जब गणधर गौतम ने सुनी तो भगवान् से जिज्ञासा की। भगवान् ने कहा– 'यह सही नहीं है। देवों की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है।' यह बात उस परिव्राजक के कानों तक पहुंची। वे शंकित हो गये और प्रभु के पास आये। जिनेश्वर देव का प्रवचन सुनकर उनके पास दीक्षित हो गये, ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और अंत में निर्वाण को प्राप्त किया। वहां से प्रभु राजगृह पधारे, वहीं चातुर्मास किया। वहां मंकाई, किंकत, अर्जुनमाली, कश्यप, गाथापति वरदत्त ने संयमी जीवन स्वीकार किया।

सर्वज्ञता का सातवां वर्ष

राजगृह चातुर्मास के बाद विहार न करके भगवान् वहीं ठहर गये। इस सतत प्रवास का आशातीत लाभ भी मिला। राजगृह नगर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों ने श्रमण धर्म एवं श्रावक धर्म स्वीकार किया। श्रेणिक के जालि, मयालि आदि तेईस पुत्रों एवं नंदा, नंदमती आदि तेरह रानियों ने भगवान् के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

मुनि आर्द्रक ने कुछ हस्तितापसों एवं स्वप्रतिबोधित पांच सौ चोरों के साथ भगवान् के पास दीक्षा स्वीकार की। इस वर्ष भी भगवान् ने वर्षावास राजगृह में ही बिताया।

सर्वज्ञता का आठवां वर्ष

वर्षावास प्रवास संपन्न कर भगवान् आलंभिया पधारे। आलंभिया से कौशंबी पधारे। उस समय उज्जयिनी के राजा चंडप्रद्योतन ने कौशंबी को घेर लिया था। कौशाम्बी पर महारानी मृगावती शासन कर रही थी। उनका पुत्र उदयन नाबालिक था। चंडप्रद्योतन मृगावती के रूप-लावण्य पर मुग्ध हो उसे अपनी रानी बनाना चाहता था।

भगवान् के आगमन से मृगावती को बहुत प्रसन्नता हुई। वह महावीर के समवसरण में पहुंची। उस समय चंडप्रद्योतन भी भगवान् की सेवा में उपस्थित था। महारानी ने आत्मकल्याण का सुंदर अवसर जानकर सभा के बीच खड़ी होकर बोली– "भगवन् ! मैं प्रद्योत की आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूं तथा अपने पुत्र उदयन को इनके संरक्षण में छोड़ती हूं।" प्रद्योत की यद्यपि दीक्षा की स्वीकृति देने की इच्छा नहीं थी, पर भगवान् के समक्ष महती उपस्थिति में लज्जावश इन्कार नहीं कर सका

अंगारवती आदि चंडप्रद्योतन की आठ रानियों ने भी दीक्षा की अनुमति मांगी। प्रद्योत ने उन्हें भी आज्ञा दे दी। भगवान् ने मृगावती, अंगारवती आदि रानियों को दीक्षा प्रदान की। कौशंबी से विहार कर महावीर वैशाली में पधारे, वहीं उन्होंने चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का नौवां वर्ष

वैशाली का चातुर्मासिक प्रवास परिसंपन्न कर प्रभु मिथिला होते हुए काकन्दी पधारे। वहां का राजा जितशत्रु दर्शनार्थ आया। भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र धन्य वैभव को छोड़कर दीक्षा ली। सुनक्षत्र भी मुनि बने। कंपिलपुर में कुंडकौलिक ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। वहां से प्रभु पोलासपुर पधारे।

पोलासपुर में प्रभु का प्रवचन सुनकर धनाढ्य कुंभकार सद्दालपुत्र व उनकी पत्नी अग्निमित्रा श्रमणोपासक बन गये। दोनों पूर्व में गोशालक के आजीवक मत के अनुयायी थे। जब गोशालक को इस बात का पता चला तो वह अपने संघ के साथ सद्दालपुत्र के पास आया और उसे पुनः आजीवक मत में आने के लिए समझाने लगा। सद्दालपुत्र पर गोशालक का कोई असर नहीं पड़ा। भगवान् ने इस वर्ष का चातुर्मास वाणिज्यग्राम में किया।

सर्वज्ञता का दसवां वर्ष

वर्षावास प्रवास संपन्न कर भगवान् राजगृह पधारे। वहां महाशतक गाथापति ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। पार्श्व परंपरा के अनेक श्रमणों ने चातुर्याम धर्म से पंच महाव्रत रूप धर्म में प्रवेश किया। इस वर्ष चातुर्मास राजगृह में किया।

सर्वज्ञता का ग्यारहवां वर्ष

चातुर्मास के बाद भगवान् कृतंगला पधारे और वहां छत्रपलास चैत्य में विराजे। उस समय श्रावस्ती में विद्वान् परिव्राजक कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक रहता था। उसकी पिंगल निर्ग्रन्थ से भेंट हुई। पिंगल ने कई प्रश्न पूछे, पर स्कन्दक उनका उत्तर देने में सशंकित हो गया। इन प्रश्नों का समाधान पाने महावीर के पास पहुंचा। अपनी शंकाओं का समाधान पाकर भगवान् के पास दीक्षा ले ली। कृतंगला से श्रावस्ती होकर वाणिज्यग्राम में प्रभु ने चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का बारहवां वर्ष

वर्षाकाल पूरा होने पर प्रभु ब्राह्मण कुंड के बहुशाल उद्यान में पधारे। यहां जमालि अपने पांच सौ मुनियों के साथ अलग विचरने के लिए भगवान् से अनुमति मांगी तो भगवान् मौन रहे, फिर वह स्वतंत्र होकर पांच सौ साधुओं के संग विहार करने लगे। वहां से कौशंबी पधारे। यहां सूर्य व चन्द्रमा अपने मूल रूप में भगवान् के दर्शनार्थ आये। यह भी एक "अछेरा"– आश्चर्य माना गया। कौशंबी से विहार कर महावीर चातुर्मास हेतु राजगृह पधारे।

सर्वज्ञता का तेरहवां वर्ष

राजगृह चातुर्मास संपन्न कर भगवान् चंपा पधारे। मगध नरेश श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने चंपा को अपनी राजधानी बनाया। भगवान् के आगमन

का संवाद सुनकर बड़े राजसी ठाट के साथ पूरे राजकुटुंब के संग कोणिक दर्शनार्थ आया। भगवान् के प्रवचन से उद्‌बुद्ध होकर अनेक लोगों ने अणगार व आगार धर्म स्वीकार किया। मुनि धर्म अंगीकार करने वालों में पद्म, भद्र आदि श्रेणिक के दस पौत्र प्रमुख थे। पालित जैसे कई धनाधीशों ने श्रावक व्रत ग्रहण किया। इस वर्ष प्रभु का मिथिला चातुर्मास हुआ। कई आचार्य इस वर्ष का चंपा में चातुर्मास मानते हैं।

सर्वज्ञता का चौदहवां वर्ष

मिथिला प्रवास संपन्न कर भगवान् चंपा पधारे। उस समय विदेह की राजधानी वैशाली रणभूमि बनी हुई। एक ओर वैशाली पति राजा चेटक और अठारह गणराजा तो दूसरी ओर मगधपति राजा कोणिक और उसके काल आदि सौतेले भाई अपनी-अपनी सेना के साथ लड़ रहे थे। इस युद्ध में कोणिक विजयी रहा। काल आदि दस कुमार चेटक के हाथों मारे गये। अपने पुत्र की मृत्यु के समाचारों से काली आदि रानियों को बहुत दुःख हुआ। प्रभु-प्रवचन से वैराग्यवती बन कर काली आदि दस रानियों ने प्रव्रज्या स्वीकार की। चम्पा से विहार कर भगवान् मिथिला नगरी पधारे। वहीं चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का पन्द्रहवां वर्ष

मिथिला से विहार कर भगवान् श्रावस्ती पधारे। वहां कोणिक के भाई हल्ल-बेहल्ल किसी तरह भगवान् के पास पहुंचे और उनके पास दीक्षित हो गये। कोणिक, हल्ल व विहल्ल तीनों महारानी चेलणा के ही पुत्र थे। पिता राजा श्रेणिक ने अपना देवनामी अठारहसरा हार हल्ल को तथा पाटवी हाथी सचेतक गंधहस्ती जो अतिशय सुंदर, चतुर व समझदार था विहल्ल को दे दिया। श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने अपनी रानी पद्मावती के बहकावे में आकर दोनों भाइयों को हार व हाथी लौटाने को कहा, इस पर दोनों भाइयों ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि ये तो पिताजी द्वारा प्रदत्त हैं। दोनों भाइयों ने वहां रहना उपयुक्त नहीं समझा। वहां से अपने परिवार के साथ वैशाली में अपने नाना महाराज चेटक की शरण में चले गये। कोणिक द्वारा हार व हाथी भेजने की बात करने पर चेटक ने कहा– शरण में आने के बाद क्षत्रिय मरते दम तक रक्षा करता है। इसी कारण कोणिक एवं चेटक के बीच घमासान युद्ध हुआ था।

गोशालक का मिथ्या प्रलाप

भगवान् श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान में ठहरे। उन दिनों मंखलिपुत्र गोशालक भगवान् से विलग होकर प्रायः श्रावस्ती के आस-पास ही घूमता था। तेजोलेश्या

की प्राप्ति और निमित्त शास्त्रों का अभ्यास उन्होंने श्रावस्ती में ही किया था। श्रावस्ती में अयंपुल गाथापति और हालाहला कुंभारिण गोशालक के परम भक्त थे। प्राय गोशालक हालाहला कुंभारिण की भांडशाला में ठहरता था।

भगवान् महावीर के छद्मस्थ काल में गोशालक उनके साथ छह वर्ष तक रहा था। महावीर से तेजोलेश्या प्राप्ति का उपाय पाकर वह उनसे अलग हो गया था। तेजोलेश्या एवं अष्टांग निमित्त ज्ञान से वह स्वयं को बहुत प्रभावशाली मानता था। इसी आधार पर वह कहा करता था–"मैं जिन, सर्वज्ञ एवं केवली हूं।" उनकी इस घोषणा की नगरी में बड़ी चर्चा थी।

गौतम स्वामी ने नगर में भिक्षार्थ घूमते हुए यह जनप्रवाद सुना कि श्रावस्ती में दो जिन (तीर्थंकर) विराज रहे हैं। एक श्रमण भगवान् महावीर और दूसरे मंखलिपुत्र गोशालक। गौतम स्वामी ने इस संदर्भ में पूछा तो भगवान् ने कहा– 'गौतम ! गोशालक जिन, केवली व सर्वज्ञ नहीं है। वह अपने विषय में जो घोषणा कर रहा है वह मिथ्या है। यह शरवण ग्राम के बहुल ब्राह्मण की गौशाला में जन्म लेने से गोशालक व मंखलि नामक मंख का पुत्र होने से मंखलिपुत्र कहलाता है। यह आज से चौबीस वर्ष पूर्व मेरा शिष्य बना था। छह वर्ष तक मेरे साथ रहा था। मेरे द्वारा बताये उपाय से तेजोलब्धि प्राप्त की, दिशाचरों से निमित्त शास्त्र पढ़ा। उसी आधार पर यह कहता फिर रहा है। वस्तुतः इसमें अभी सर्वज्ञ बनने की अर्हता नहीं है।'

महावीर-गौतम संवाद पूरे नगर में फैल गया। मंखलिपुत्र गोशालक ने भी यह बात सुनी तो वह बहुत कोपायमान हुआ। वे अपने संघ के साथ इस बारे में विमर्श करने लगे। उस समय महावीर के शिष्य आनंद नित्य प्रति बेले-बेले की तपस्या कर रहे थे। पारणा के लिए उस कुंभारिण के घर से आगे होकर जा रहे थे। गोशालक ने देखते ही उन्हें रोककर कहा–'देवानुप्रिय आनंद ! तुम्हारे धर्मगुरु महावीर देव, मनुष्यों द्वारा बहुत प्रशंसित व पूजित है, पर वे मेरे बारे में कुछ भी कहेंगे तो मै मेरे तपस्तेज से उन्हें भस्म कर दूंगा। जा अपने धर्माचार्य के पास, मेरी कही हुई बात उन्हें सुना दे।'

गोशालक का यह क्रोधपूर्ण उद्गार सुनकर आनंद स्थविर घबरा गये। वे तीव्रगति से महावीर के पास गये और गोशालक की बातें सुनाकर बोला– 'भंते! गोशालक अपने तप तेज से किसी को जलाकर भस्म करने में समर्थ है।'

भगवान् ने कहा– 'आनंद ! अपने तप तेज से गोशालक किसी को भी जलाने में समर्थ है पर वह अर्हत्-तीर्थंकर को जलाकर भस्म करने में समर्थ नहीं है। तुम गौतम आदि सभी मुनियों को सूचना कर दो कि गोशालक इधर आ रहा है। इस समय उसके भीतर अत्यन्त मलिन भाव है, द्वेष से भरा हुआ है इसलिए वह कुछ

भी कहे, कुछ भी करे। पर किसी को भी प्रतिवाद नहीं करना चाहिए। कोई भी उससे किसी भी प्रकार की चर्चा न करे। "आनंद भगवान् के इस संदेश को सब मुनियों को सुनाने गये।

इतने में गोशालक अपने आजीवक संघ के साथ भगवान् के समीप पहुंच गया और बोला– 'काश्यप ! तुमने यह तो सही कहा है कि मंखलिपुत्र गोशालक मेरा शिष्य है, पर वह तुम्हारा शिष्य मंखलिपुत्र कभी का मरकर देवलोक चला गया है। मैं तो उस गोशालक के शरीर प्रविष्ट उदायी कुंडियायन नामक धर्म प्रवर्तक हूं। यह मेरा सातवां शरीरान्तर प्रवेश है। मैं गोशालक नहीं, उससे भिन्न आत्मा हूं। तुम मुझे गोशालक कहते हो, यह सरासर मिथ्या है।'

गोशालक के ये असभ्य वचन सर्वानुभूति मुनि से सहे नहीं जा सके। उन्होंने समझाने का प्रयास किया। पर उनके शब्द आग में ईंधन डालने का काम कर गये। गोशालक का इससे क्रोध और भभक गया। उसने तेजोलेश्या को एकत्र करके सर्वानुभूति पर छोड़ दी। इस प्रचंड़ आग से सर्वानुभूति का शरीर जलकर राख हो गया। मुनि आठवें सहस्रार देवलोक में महर्द्धिक देव बन गये।

गोशालक फिर बकने लगा। इस पर सुनक्षत्र मुनि उसे हित-वचन कहने लगे। गोशालक ने सर्वानुभूति की तरह सुनक्षत्र मुनि को भी भस्म कर दिया। कई ऐसा भी मानते है कि सुनक्षत्र मुनि काफी जल गये। अंतिम आलोचना कर मुनि बारहवें अच्युत देवलोक में देव बने।

भगवान् पर तेजो लेश्या का प्रयोग

महावीर ने कहा–"गोशालक! तू अपने आपको छिपाने का प्रयास मत कर। तू वही गोशालक है जो मेरा शिष्य होकर रहा था। "महावीर के इस सत्य उद्‌घाटन से गोशालक अत्यन्त क्रोधित हो गया और अनर्गल प्रलाप करने लगा।

भगवान् ने उसे अनार्य कृत्य न करने के लिए समझाया, पर उसका कोई असर नहीं हुआ। वह पांच-सात कदम पीछे हटा, अपनी सारी तेजो लेश्या को एकत्रित की और उसे भगवान् की और निकाला। तेजो लेश्या भगवान् का चक्कर काटती हुई ऊपर आकाश में उछली और वापस गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हो गई। तेजो लेश्या के शरीर में घुसते ही गोशालक का शरीर जलने लगा। जलन से व्याकुल गोशालक बोला–'काश्यप ! मेरे तप तेज से तेरा शरीर उत्तप्त हो गया है। अब तू पित्त और दाहज्वर से पीड़ित होकर छह महिने के भीतर छद्‌मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होगा।"

भगवान् महावीर ने कहा–"गोशालक ! मैं छह महीने के भीतर नहीं मरूंगा। मै तो सोलह वर्ष तक इस धरा पर सुखपूर्वक विचरूंगा। तू खुद सात दिन में पित्त-ज्वर से पीड़ित होकर मरेगा।"

इसके बाद भगवान् ने मुनियों को कहा– अब गोशालक निस्तेज हो गया है। अब इसे धार्मिक चर्चा कर निरुत्तर कर सकते हैं।'' मुनियों ने उससे कई प्रश्न पूछे पर वह उनका उत्तर नहीं दे सका। अनेक आजीवक श्रमण भगवान् के संघ में आकर मिल गये।

गोशालक पीड़ित एवं हताश होकर हालाहला कुंभारिण के घर आया और शरीर की जलन मिटाने के लिए अनेक विध प्रयत्न करने लगा, पर शरीर दाह कम नहीं हुआ। उसका शरीर दाह बढ़ता ही गया। आखिर महावीर की भविष्यवाणी के अनुसार सातवें दिन गोशालक मृत्यु धर्म को प्राप्त हुआ। अंत समय में उसने अपने इस कृत्य के लिए बहुत पश्चात्ताप किया, जिससे मरकर बारहवें देवलोक में देव बना। देवलोक से च्यवकर लंबे समय तक संसार में परिभ्रमण करता हुआ निर्वाण को प्राप्त करेगा।

सिंह अणगार का रुदन

भगवान् ने श्रावस्ती से विहार किया और विचरते हुए मेंढिय गांव पधारे। वहां गोशालक के द्वारा छोड़ी गई तेजो लेश्या के प्रभाव से दाह ज्वर उत्पन्न हो गया। भगवान् के खून की दस्तें लगने लगी जिससे उनकी काया दुर्बल हो गई। लोगों में चर्चा हो गई– कहीं गोशालक की भविष्यवाणी सच न हो जाए क्योंकि उनका शरीर क्षीण हो रहा है।'

सालकोष्ठ उद्यान के पास मालुका कच्छ में ध्यान करते हुए भगवान् के शिष्य सिंह मुनि ने उक्त चर्चा सुनी तो उनका ध्यान टूट गया। सिंह अणगार को यह बहुत बुरा लगा और दुःख से आक्रांत होकर जोर-जोर से रोने लगे। भगवान् ने संतों को भेजकर उसे बुलाया और कहा– ''सिंह ! तुम मेरी अनिष्ट कल्पना की चिंता मत करो। मैं अभी साढ़े पन्द्रह वर्ष तक विचरूंगा।'

सिंह – 'भगवन् ! आपका वचन सत्य हो। हम यही चाहते हैं। आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण हो रहा है। यह बड़े दुःख की बात है। क्या इस बीमारी को मिटाने का कोई उपाय नहीं हैं।'

भगवान् ने कहा – 'सिंह ! अवश्य है। तेरी इच्छा है तो तू इसी मेंढ़िय गांव में रेवती गाथापत्नी के घर जा। उसके घर कुम्हड़े तथा बिजोरे से बने हुए दो पाक तैयार हैं। इनमें से पहला जो मेरे लिए बना है उसे छोड़ दूसरे पाक को ले आ जो अन्य प्रयोजनवश बना है।'

भगवान् से आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्नमना सिंह मुनि बिजोरा पाक लेकर उनके पास आये। भगवान् ने उस औषधि का सेवन किया और एकदम ठीक हो गये। भगवान् पूर्ववत् स्वस्थ हो गये। मेंढ़िय गांव से विहार कर भगवान् मिथिला पधारे। वहीं चातुर्मास संपन्न किया। मतभेद होने से जमालि भगवान् से पृथक् हो गया।

भगवान् की पुत्री साध्वी प्रियदर्शना भी पहले अलग हुई। बाद में श्रावक ढंक से प्रतिबोध पाकर पुनः भगवच्चरणों में पहुंचकर अपनी संयम-साधना में लीन हो गई।

सर्वज्ञता का सोलहवां वर्ष

मिथिला का पावस प्रवास संपन्न कर भगवान् श्रावस्ती पधारे। वहां पार्श्व परंपरा के प्रभावशाली आचार्य केशीश्रमण अपने पांच सौ साधुओं के साथ श्रावस्ती पधारे। गौतम स्वामी के साथ केशीकुमार श्रमण का लंबा वार्तालाप हुआ। इसका विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के तेइसवें अध्ययन में मिलता है। गौतम के विचारों से प्रभावित होकर केशीकुमार श्रमण अपने पांच सौ साधुओं के साथ चातुर्याम धर्म से पंच महाव्रत धर्म को स्वीकार किया और महावीर के श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये।

श्रावस्ती से अहिच्छत्रा होते हुए हस्तिनापुर पधारे। वहां का राजा शिव पहले संन्यासी परंपरा में दीक्षित हुआ। तपस्या के द्वारा उसे विभंग अज्ञान व अवधि दर्शन उत्पन्न हुआ। उससे सात द्वीप-समुद्र को देखने लगा और निर्णय घोषित कर दिया कि सात ही द्वीप समुद्र हैं।" गौतम के पूछने पर भगवान् ने कहा - 'सात नहीं, असंख्य द्वीप समुद्र है।" यह बात जब शिव के पास पहुंची तो वह शंकित हो गया। इस शंका से वह विशेष ज्ञान विलुप्त हो गया। शंका का समाधान पाने शिव भगवान् के पास आया, समझा और दीक्षित हो गया, अंत में निर्वाण को पाया। इस वर्ष का चातुर्मास वाणिज्य ग्राम में हुआ।

सर्वज्ञता का सतरहवां वर्ष

इस वर्ष भगवान् ने राजगृह में चातुर्मास बिताया। वहां अनेक मुनियों ने विपुलाचल पर्वत पर संथारा कर स्वर्ग एवं निर्वाण को प्राप्त किया।

सर्वज्ञता का अठारहवां वर्ष

राजगृह चातुर्मास संपन्न कर भगवान् पृष्ठ चंपा पधारे। वहां के राजा शाल एवं उनके छोटे भाई युवराज महाशाल ने अपने भाणेज गांगली को राज्य भार संभलाकर भगवान् के पास संयम स्वीकार किया। चंपा से भगवान् दशार्णपुर पधारे। वहां का राजा दशार्णभद्र सजधज कर प्रभु दर्शन के लिए निकला। उसके भीतर यह अहं था कि इतनी ऋद्धि-सिद्धि के साथ शायद ही कोई राजा दर्शन करने आया हो! आकाश मार्ग से आ रहे इन्द्र को इस अहं का आभास हो गया। वह अपनी ऋद्धि को प्रदर्शित करता हुआ आया। दशार्णभद्र का यह देखते ही अहं विगलित हो गया। तत्काल राजा ने भगवान् के पास दीक्षा स्वीकार कर ली। इन्द्र ने मुनि दशार्णभद्र को नमस्कार किया। भगवान् ने इस वर्ष वाणिज्य ग्राम में चातुर्मास किया।

सर्वज्ञता का उन्नीसवां वर्ष

चातुर्मास संपन्न कर भगवान् साकेत, श्रावस्ती आदि नगरों में ठहरते हुए कांपिल्यपुर पधारे। वहां सात सौ परिव्राजकों के साथ अम्बड़ परिव्राजक भगवान् के उपदेश को सुनकर श्रावक बना। वह परिव्राजक वेश में रहकर श्रावकाचार का पालन करता था। उसे वैक्रिय लब्धि प्राप्त थी, जिससे कई रूप बनाकर पारणा हेतु सौ घरों में जाता। लोगों में बड़ा कुतूहल पैदा होता था। इस वर्ष भगवान् ने वैशाली में चौमासा किया।

सर्वज्ञता का बीसवां वर्ष

पावस प्रवास संपन्न कर वाणिज्य ग्राम पधारे। वहां पार्श्व संतानीय गांगेय मुनि ने भगवान् से विविध प्रश्न किये। प्रश्नोत्तर के बाद उन्होंने प्रभु के पास पंच महाव्रत रूप दीक्षा अंगीकार की। इस वर्ष का पावस भी वैशाली में किया।

सर्वज्ञता का इक्कीसवां वर्ष

वैशाली से विहार कर भगवान् राजगृह पधारे। वहां मद्दुक श्रावक ने कालोदायी आदि अन्यतीर्थिकों के प्रश्नों का यौक्तिक समाधान किया। भगवान् ने मद्दुक के तत्त्वज्ञान की प्रशंसा की। प्रभु ने राजगृह में वर्षावास किया।

सर्वज्ञता का बाइसवां वर्ष

आर्य जनपद में परिव्रजन करते हुए भगवान् ने पावस प्रवास नालंदा में किया। अन्यतीर्थिक कालोदायी, शैलोदायी आदि ने भगवान् से विविध चर्चा के बाद मुनि दीक्षा स्वीकार की। गौतम स्वामी से चर्चा करने के बाद पार्श्व परंपरा के मुनि उदक महावीर के धर्मशासन में सम्मिलित हो गये।

सर्वज्ञता का तेईसवां वर्ष

नालंदा से विहार कर प्रभु वाणिज्य ग्राम पधारे। वहां प्रभु के प्रवचन से प्रभावित होकर सुदर्शन श्रेष्ठी ने संयम स्वीकार किया। मुनि सुदर्शन ने बारह वर्ष चारित्र पर्याय पालकर निर्वाण को प्राप्त किया। इस वर्ष भगवान् ने वैशाली नगर में चातुर्मास बिताया।

सर्वज्ञता का चौबीसवां वर्ष

वैशाली से विहार कर भगवान् कौशल देश की प्रसिद्ध नगरी साकेत पधारे। वहां राजा किरात ने भगवान् के दर्शन किये, देशना सुनी और विरक्त होकर साधु बन गये। वहां से मथुरा, शौर्यपुर, नंदीपुर नगरों को अपनी चरणधूलि से पावन करते हुए मिथिला नगरी पधारे। वहीं चातुर्मास संपन्न किया।

सर्वज्ञता का पच्चीसवां वर्ष

मिथिला से भगवान् राजगृह पधारे। वहीं पावस प्रवास किया। गणधर प्रभास

ने एक मास के अनशन में निर्वाण को प्राप्त किया।

सर्वज्ञता का छब्बीसवां वर्ष

इस वर्ष का चातुर्मास नालन्दा में किया। इसी वर्ष गणधर अचलभ्राता व मेतार्य ने संथारा करके मोक्ष प्राप्त किया।

सर्वज्ञता का सताइसवां वर्ष

इस वर्ष का चातुर्मास मिथिला में हुआ।

सर्वज्ञता का अट्ठाइसवां वर्ष

इस वर्ष का चातुर्मास भी मिथिला में हुआ।

सर्वज्ञता का उनतीसवां वर्ष

मिथिला से विहार कर भगवान् राजगृह पधारे। वहीं चातुर्मास की स्थापना की। इस वर्ष अग्निभूति और वायुभूति गणधर ने अनशनपूर्वक निर्वाण को प्राप्त किया।

सर्वज्ञता का तीसवां व अंतिम वर्ष

चातुर्मास की समाप्ति के बाद भी भगवान् कुछ समय राजगृह में विराजे। उसी समय उनके गणधर अव्यक्त, मंडित, मौर्यपुत्र तथा अकंपित ने एक-एक मास के अनशन में निर्वाण को प्राप्त किया।

भगवान् महावीर का पावा में अंतिम वर्षावास था। वहां राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में चातुर्मास हेतु पधारे। अनेक भव्य जीव उद्‌बोधित हुए। राजा पुण्यपाल ने भगवान् के पास संयम स्वीकार किया।

अंतिम प्रवचन

भगवान् केवली पर्याय में उनतीस वर्ष छह महिना पन्द्रह दिन तक पूरे भूमंडल पर विचरते रहे। लाखों लोगों को भगवान् से मार्गदर्शन मिला, जीवनदर्शन मिला। समस्त आर्य जनपद में उन्होंने एक हलचल पैदा कर दी। अन्य दर्शनों पर भी उनके द्वारा निरूपित तत्व की छाप पड़ी, तभी पशुबलि व दासप्रथा चरमरा कर टूटने लगी। किसी ने प्रेम के नाम से, किसी ने करुणा के नाम से, किसी ने रहम के नाम से अपने-अपने धर्म में अहिंसा को स्थान देना शुरू कर दिया। सचमुच महावीर का जीवन आलोक पुंज था। उसके आलोक में अनेक प्राणियों ने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था।

उन्होंने अपना अन्तिम वर्षावास लिच्छवी तथा मल्लि गणराज्यों के प्रमुखों की विशेष प्रार्थना पर पावा में बिताया। श्रद्धालुओं को पता था कि यह भगवान् का अंतिम वर्षावास है, अतः दर्शन, सेवा तथा प्रवचन का लाभ दूर-दूर के लोगों ने भी उठाया।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी की रात्रि में भगवान् ने अन्तिम अनशन कर लिया। सेवा में समागत अनेक श्रद्धालु तथा चतुर्विध संघ को अनेक शिक्षाएं फरमाई। अन्तिम दिन-कार्तिक कृष्णा अमावस्या की संध्या में प्रभु ने अपने प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम को वेद-विद्वान् देव शर्मा को समझाने के लिए उनके यहां भेजा। गौतम स्वामी भगवान् की आज्ञा से वहां चले गये तथा उनसे तात्त्विक चर्चा की।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को अंतिम समवसरण जुड़ा। इसमें बहुत सारे राजे, तथा विशाल जनमेदिनी अंतिम देशना सुनने उपस्थित हुई। भगवान् ने प्रवचन शुरू किया। भगवान् के बेले का तप था। उन्होंने ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक और ५५ अध्ययन पापफल विपाक संबंधी कहे। बीच में कई तरह के प्रश्नोत्तर चलते रहे। उसके बाद ३६ अध्ययन कहे जो आज उत्तराध्ययन के रूप में प्रस्तुत हैं। भगवान् ने १६ प्रहर तक देशना दी। उस बीच प्रश्नोत्तर व चर्चा चलती रही।

इन्द्र द्वारा आयु वृद्धि की प्रार्थना

भगवान् के मोक्ष-गमन का समय सन्निकट था। देवों व मानवों की भारी भीड़ थी। शक्र ने वंदना कर पूछा–"भंते ! आपके जन्मकाल में जो उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था, उस पर इस समय भस्म ग्रह संक्रान्त होने वाला है जो जन्म-नक्षत्र पर दो हजार वर्ष तक संक्रान्त रहेगा। आप अपना आयुकाल थोड़ा बढ़ा लें तो वह प्रभावी नहीं हो सकेगा।"

भगवान् ने कहा– 'इन्द्र ! आयु को घटाने-बढ़ाने की किसी में शक्ति नहीं है। जब जैसा होना है वह होता ही है। ग्रह तो मात्र उसके सूचक होते हैं।' इस प्रकार प्रभु ने इन्द्र की शंका का समाधान किया।

निर्वाण

छत्तीस अध्ययनों की प्ररूपणा के पश्चात् भगवान् ने सैंतीसवें प्रधान नामक अध्ययन को शुरू किया। उसकी बीच में ही देशना देते-देते प्रभु पर्यंकासन में स्थित हो गए। अर्धरात्रि के समय बादर काय योग में स्थित रहकर बादर मनोयोग और बादर वचन योग का निरोध किया, फिर सूक्ष्म काय योग में स्थित रहकर बादर काय योग व आनापान का निरोध किया, और उसके बाद सूक्ष्म मन व सूक्ष्म वचन योग को रोका। शुक्ल ध्यान के तीसरे चरण में सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती को प्राप्त कर सूक्ष्म काय योग का निरोध किया। समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति नामक चौथे चरण में पहुंचकर अ इ उ ऋ लृ– इन ह्रस्वाक्षर उच्चारण जितने काल तक शैलेशी अवस्था को प्राप्त किया, चार अघाति कर्म -वेदनीय, नाम गोत्र व आयुष्य का क्षय किया। इसके साथ सिद्ध, बुद्ध, मुक्त बने और परिनिर्वाण को प्राप्त किया।

पीछे से प्रभु का वह शरीर निस्पंद होकर चेतनाहीन बन गया। उपस्थित शिष्य समुदाय ने भगवान् के विरह को गम्भीर वातावरण में कायोत्सर्ग करके माध्यस्थ

भाव से सहन करने का प्रयत्न किया।

कुछ समय में देववृन्द आकाश से उतरने लगे। चारों तरफ भगवान् के निर्वाण की चर्चा होने लगी। लोग घरों से निकल-निकल कर आने लगे, किन्तु अमावस्या की रात्रि में लोगों की अंधेरी गलियां पार करने में कठिनाई हो रही थी। कहते हैं– देवों ने मोड़-मोड़ पर रत्नों से प्रकाश किया। प्रभु के निर्वाण-स्थल पर रत्नों की जगमगाहट लग गई। चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल गया।

गौतम स्वामी को केवलज्ञान

वहां उपस्थित लिच्छवी, वज्जी तथा मल्ली गणराज्य के प्रमुखों ने निर्वाण दिवस प्रतिवर्ष मनाने की घोषणा की। रत्नों की जगमगाहट के स्थान पर दीप जलाकर प्रकाश करने की व्यवस्था की गई। भगवान् ने आज के दिन परम समृद्धि को प्राप्त किया था, अतः कार्तिक अमावस्या को प्रकाश का पर्व, समृद्धि का पर्व माना जाने लगा।

चर्चा करते हुए गौतम स्वामी को जब प्रभु के निर्वाण का पता लगा तो तत्काल वापिस आ गये। भगवान् के निस्पंद शरीर को देखकर वे मोहाकुल बनकर मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर पहले तो उन्होंने विलाप किया, किन्तु तत्काल भगवान् की वीतरागता पर विचार करने लगे। चिन्तन की गहराई में पहुंच कर स्वयं रागमुक्त बन गये। क्षपकश्रेणी लेकर उन्होंने केवलत्व प्राप्त किया। भगवान् का निर्वाण और गौतम स्वामी की सर्वज्ञता दोनों अमावस्या के दिन ही हुए थे, अतः कार्तिक की अमावस्या का दिन जैनों के लिए ऐतिहासिक पर्व बन गया।

शरीर का संस्कार

देवों, इन्द्रों तथा हजारों-हजारों लोगों ने मिलकर भगवान् के शरीर का अग्नि-संस्कार किया। सुसज्जित सुखपालिका में प्रभु के शरीर को अवस्थित किया। निर्धारित राज-मार्ग से प्रभु के शरीर को ले जाया गया। पावा नरेश हस्तिपाल विशेष व्यवस्था में लगा हुआ था। अपने प्रांगण में भगवान् के निर्वाण से अत्यधिक प्रसन्न भी था तो विरह की व्यथा से गंभीर भी बना हुआ था। बाहर से आये हुए अतिथियों की समुचित व्यवस्था तथा भगवान् के अग्नि-संस्कार की सारी व्यवस्थाओं का केन्द्र राजा हस्तिपाल ही था। देवगण अपनी-अपनी व्यवस्था में लगे हुए थे। अग्नि-संस्कार के बाद लोग भगवान् के उपदेशों का स्मरण करते हुए अपने-अपने घरों को गये। भगवान् का निर्वाण हुआ तब चौथे आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी थे।

तीर्थ के बारे में प्रश्न

गौतम स्वामी ने एक बार भगवान् से पूछा था– 'भगवन् ! आपका यह तीर्थ कब तक रहेगा ?' भगवान् ने उत्तर दिया– 'मेरा यह तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। अनेक-अनेक साधु-साध्वियां तथा श्रावक-श्राविकाएं इसमें विशेष साधना

करके आत्म-कल्याण करेंगे, 'एकाभवतारी बनेंगे।'

ग्रन्थों में आता है कि पांचवें आरे के अन्त में दुप्रसह नामक साधु, फल्गुश्री नाम की साध्वी, नागिल नाम का श्रावक तथा सत्यश्री नाम की श्राविका रहेंगे। अन्तिम दिन अनशन कर ये चारों स्वर्गस्थ बनेंगे। वे ही इस अवसर्पिणी के अंतिम एकाभवतारी होंगे।

महावीर का अप्रतिहत प्रभाव

भगवान् महावीर का विहार क्षेत्र वैसे तो सीमित रहा। ज्यादातर अंग, मगध, काशी, कौशल, सावत्थी, वत्स आदि जनपदों में विचरते रहे। भगवान् का सबसे लंबा विहार सिंधु-सौवीर देश में हुआ।

भगवान् महावीर के समय अनेक धर्म-प्रवर्तक विद्यमान थे। साधना, ज्ञान तथा लब्धियों के माध्यम से वे अपना-अपना प्रभाव जमाये हुए थे। भगवान् महावीर के अतिरिक्त छह आचार्य और भी तीर्थंकर कहलाते थे। वे स्वयं को सर्वज्ञ बतलाते थे। फिर भी भगवान् महावीर का अप्रतिहत प्रभाव था। वैशाली राज्य के गणपति चेटक, मगध सम्राट् श्रेणिक, अंग सम्राट् कोणिक, सिंधु नरेश उदाई, उज्जयनी नरेश चन्द्रप्रद्योतन आदि अनेक गणनायक सम्राट्, लिच्छवी व वज्जि गणराज्यों के प्रमुख भगवान् के चरणसेवी उपासक थे। आनन्द, कामदेव, शकडाल और महाशतक जैसे प्रमुख धनाढ्य, समाज सेवी, धनजी जैसे चतुर व्यापारी तथा शालिभद्र जैसे महान् धनाढ्य व विलासी व्यक्ति भी आगार व अणगार धर्म के अभ्यासी बने थे। आर्य जनपद में भगवान् का सर्वांगीण प्रभाव था। उन्होंने सामाजिक बुराइयों को खत्म कर नये सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना की।

महावीर के प्रमुख सिद्धांत

भगवान् महावीर ने सर्वज्ञ होते ही तत्कालीन रूढ़ धारणाओं पर प्रबल प्रहार किया। उन्होंने प्रचलित मिथ्या मान्यताओं का आमूलचूल निरसन किया। उनके प्रमुख सिद्धांत निम्नांकित हैं–

जातिवाद का विरोध

स्वयं अभिजात कुल के होते हुए भी उन्होंने जातिवाद को अतात्त्विक घोषित किया। उनका स्पष्ट उद्घोष था– मनुष्य जन्म से ऊंचा-नीचा नहीं होता। केवल कर्म ही व्यक्ति के ऊंच या नीच के मापदण्ड़ हैं। उन्होंने अपने तीर्थ में शूद्रों को भी सम्मिलित किया। लोगों को यह अटपटा जरूर लगा, किन्तु भगवान् ने स्पष्ट कहा– किसी को जन्मना नीच मानना हिंसा है। भगवान् की इस क्रांतिकारी घोषणा से लाखों-लाखों पीड़ित, दलित शूद्र लोगों में आशा का संचार हुआ। भगवान् के समवसरण में सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के सम्मिलित होकर प्रवचन सुनते थे।

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई

भगवान् से पूछा गया– 'आप द्वारा प्रतिपादित धर्म को कौन ग्रहण कर सकता है?' उत्तर में प्रभु ने कहा– 'मेरे द्वारा निरूपित शाश्वत धर्म को हर व्यक्ति स्वीकार कर सकता है। कोई बन्धन नहीं है। जाति, वर्ग या चिन्ह धर्म को अमान्य हैं। शाश्वत धर्म को स्वयं में टिकाने के लिए हृदय की शुद्धता जरूरी है। अशुद्ध हृदय में धर्म नहीं टिकता। धर्म के स्थायित्व के लिए पवित्रता अनिवार्य है।

पशु-बलि का विरोध

यज्ञ के नाम पर होने वाले बड़े-बड़े हिंसाकांडों के विरूद्ध भी महावीर ने आवाज उठाई। निरीह मूक पशुओं को बलि देकर धर्म कमाने की प्रचलित मान्यता को मिथ्यात्व कहा। उन्होंने स्पष्ट कहा– हिंसा पाप है। उससे धर्म करने की बात खून से सने वस्त्र को खून से ही साफ करने का उपक्रम है। हिंसा से बचकर ही धर्म कमाया जा सकता हैं।

स्त्री का समान अधिकार

भगवान् महावीर ने मातृ-जाति को आत्म-विकास के सारे सूत्र प्रदान किये। उनकी दृष्टि में स्त्री, पुरुष केवल शरीर के चिन्हों से है। आत्मा केवल आत्मा है। स्त्री या पुरुष के मात्र लिंग से कोई फर्क नहीं पड़ता। आत्म विकास का जहां तक सवाल है, स्त्री पुरुषों के समकक्ष है। मातृ-शक्ति को धर्म से वंचित करना बहुत बड़ा अपराध है, धार्मिक अंतराय है।

जन-भाषा में प्रतिबोध

भगवान् महावीर ने अपना प्रवचन सदैव जन-भाषा में दिया। मगध और उसके आस-पास के लोग अर्ध मागधी भाषा का प्रयोग करते थे। भगवान् ने भी अपना प्रवचन अर्ध-मागधी में ही दिया। जनसाधारण की भाषा बोलकर वे जनता के बन गये। जैनों के मूल आगम आज भी अर्ध मागधी भाषा में उपलब्ध है।

दास प्रथा का विरोध

भगवान् महावीर ने व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया था। उन्होंने दास-प्रथा को धर्म-विरूद्ध घोषित किया। किसी व्यक्ति को दास के रूप में खरीदना, अपना गुलाम बनाकर रखना हिंसा है। हर व्यक्ति की स्वतंत्रता स्वस्थ समाज का लक्षण है। किसी को दबाकर रखना उसके साथ अन्याय है। उन्होंने स्पष्ट कहा– मेरे संघ में सब समान होंगे। कोई दास नहीं हैं, एक दूसरे का कार्य, एक दूसरे की परिचर्या निर्जरा भाव से की जायेगी, दबाव से नहीं। दास-प्रथा सामूहिक जीवन का कलंक हैं।

अपरिग्रह

अपरिग्रह का उपदेश महावीर की महान् देन है। उन्होंने अर्थ के संग्रह को

अनर्थ का मूल घोषित किया। धार्मिक प्रगति में अर्थ को बाधक बताते हुए मुनिचर्या में उसका सर्वथा त्याग अनिवार्य बतलाया। श्रावक धर्म में उस पर नियंत्रण करना आवश्यक बतलाया।

भगवान् महावीर के जितने श्रावक हुए, उनके पास उस समय में जितना परिग्रह था उससे अधिक परिग्रह का उन्होंने त्याग कर दिया था। वर्तमान परिग्रह से अधिक परिग्रह का संग्रह किसी श्रावक ने नहीं रखा। प्रतिवर्ष उतना ही कमाते थे, जितना खर्च होता था। शेष का विसर्जन कर वर्ष के अन्त में परिग्रह का परिमाण बराबर कर लेते थे। उनका उपदेश था कि संग्रह समस्याओं को पैदा करता है, धार्मिक व्यक्ति जितना परिग्रह से हल्का रहता है, उतना ही अधिक अध्यात्म में प्रगति कर सकता हैं।

अनेकान्त

अहिंसा के विषय में भगवान् महावीर के सूक्ष्मतम दृष्टिकोण का लोहा सारा विश्व मानता है। उनकी दृष्टि में शारीरिक हिंसा के अतिरिक्त वाचिक तथा मानसिक कटुता भी हिंसा है। सूक्ष्मतम अहिंसा के दृष्टिकोण को साधना का विषय बनाना अन्य दार्शनिकों के लिए आश्चर्य का विषय था।

वैचारिक अहिंसा को विकसित करने के लिए उन्होंने स्याद्वाद (अनेकान्त) का प्रतिपादन किया। उनका मानना था कि हर वस्तु को एकांगी पकड़ना ही आग्रह है, सत्य का विपर्यास है, अनन्तधर्मा वस्तु के एक धर्म को मान्यता देकर शेष धर्मों को नकारना स्वयं में अपूर्णता है। हर वस्तु का अपेक्षा से विवेचन करना ही यथार्थ को पाना है। जैसे घड़े को घड़े के रूप में कहना उसके अस्तित्व का बोध है। घड़े को पट के रूप में नकारना नास्तित्व का बोध है। एक ही घड़े के अस्तित्व और नास्तित्व, दो विरोधी धर्मों का समावेश करने का नाम ही स्याद्वाद है। इस प्रकार हर वस्तु अपनी-अपनी स्थिति में अस्तित्व-नास्तित्व आदि अनेक धर्मों वाली होती है। स्याद्वाद को मान लेने के बाद एकान्तिक आग्रह स्वतः समाप्त हो जाता है। वैचारिक विग्रह का फिर कहीं अवकाश नहीं रहता।

महावीर की आयु एवं चातुर्मास

भगवान् महावीर की सर्वायु बहत्तर वर्ष थी। इसमें तीस वर्ष गृहवास, बारह वर्ष व तेरह पक्ष छद्मस्थ अवस्था, तेरह पक्ष कम तीस वर्ष केवली पर्याय में बिताया।

जन्म	–	ईसा पूर्व ५९९	विक्रम पूर्व ५४२
दीक्षा	–	ईसा पूर्व ५६९	विक्रम पूर्व ५१२
केवलज्ञान	–	ईसा पूर्व ५५७	विक्रम पूर्व ५००
निर्वाण	–	ईसा पूर्व ५२६	विक्रम पूर्व ४७०

भगवान् ने छद्मस्थ व केवली पर्याय में कुल बयालीस चातुर्मास किये। भगवान् ने सर्वाधिक चौदह चातुर्मास राजगृह व उसके उपनगर नालंदा में किये।

प्रभु का परिवार–

० गणधर	–	११
० केवलज्ञानी	–	७००
० मन : पर्यवज्ञानी	–	५००
० अवधिज्ञानी	–	१३००
० वैक्रिय लब्धिधारी	–	७००
० चतुर्दश पूर्वी	–	३००
० चर्चावादी	–	४००
० साधु	–	१४,०००
० साध्वी	–	३६,०००
० श्रावक	–	१,५९,०००
० श्राविका	–	३,१८,०००

एक झलक–

० माता	–	त्रिशला
० पिता	–	सिद्धार्थ
० नगरी	–	क्षत्रियकुंड
० वंश	–	इक्ष्वाकु
० गोत्र	–	काश्यप
० चिन्ह	–	सिंह
० वर्ण	–	सुवर्ण
० शरीर की ऊंचाई	–	७ हाथ
० यक्ष	–	मातंग
० यक्षिणी	–	सिद्धायिका
० कुमार काल	–	३० वर्ष
० राज्य काल	–	नहीं
० छद्मस्थ काल	–	१२ वर्ष ६ मास १५ दिन
० कुल दीक्षा पर्याय	–	४२ वर्ष
० आयुष्य	–	७२ वर्ष

पंच कल्याणक

	तिथि	स्थान	नक्षत्र
० च्यवन	– आषाढ़ शुक्ला ६	प्राणत	उत्तरा फाल्गुनी
० जन्म	– चैत्र शुक्ला १३	क्षत्रिय कुंड	उत्तराषाढ़ा
० दीक्षा	– मिगसर कृष्णा १०	क्षत्रिय कुंड	उत्तराषाढ़ा
० केवलज्ञान	– बैसाख शुक्ला १०	जंभिय गांव के बाहर ऋजुबालुका नदी का तट	उत्तरा फाल्गुनी
० निर्वाण	– कार्तिक कृष्णा १५	पावापुरी	स्वाति